आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-21 : हक़मार वर्ग

हक़मार वर्ग !

(विशेष सन्दर्भ : आरक्षण का वर्गीकरण)

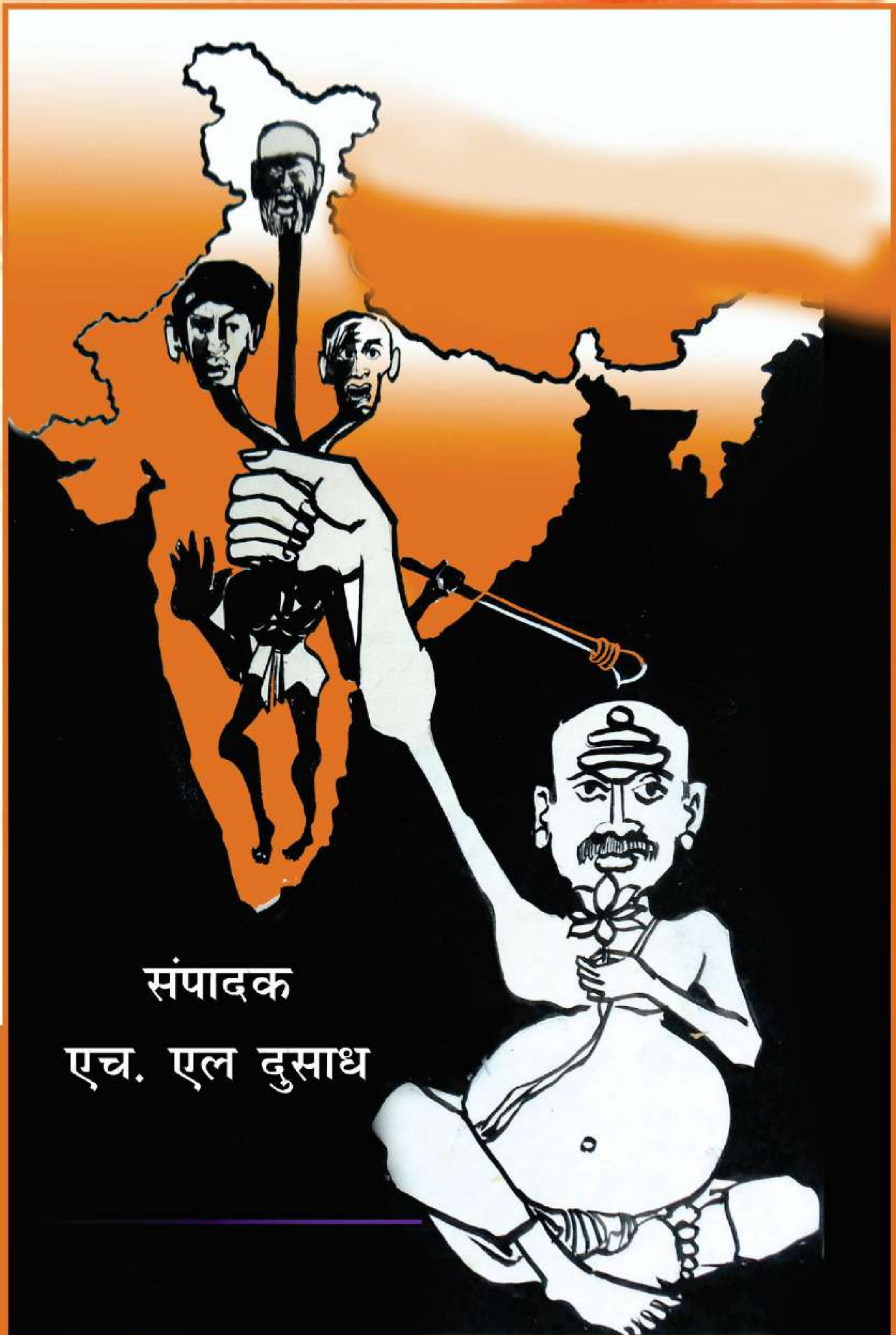

संपादक

एच. एल दुसाध

आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-21 : हक़मार वर्ग

हक़मार वर्ग!

(विशेष सन्दर्भ : आरक्षण का वर्गीकरण)

संपादक

एच. एल. दुसाध

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन

दिल्ली

पहला संस्करण : 2018

प्रकाशक : **बहुजन डाइवर्सिटी मिशन**
B-1,149/9 किशन गढ़, वसंत कुंज
नई दिल्ली-110070, सम्पर्क : 011-26125973, 9654816191
E-mail : hl.dusadh@gmail.com

प्रशासनिक कार्यालय :
2/1467, आदिल नगर, कल्याणपुर,
लखनऊ-226022
मो. : 9654816191

© **संपादक**

मूल्य : 60 रुपये

रचना : **हक़मार वर्ग!**
संपादक : एच. एल. दुसाध
आवरण : डॉ. लाल रत्नाकर
शब्दांकन : कम्प्यूटेक सिस्टम, शाहदरा, दिल्ली-32
मुद्रक : क्विक ऑफसेट, दिल्ली-94

समर्पित

दलित साहित्य के विशिष्ट
हस्ताक्षर बन्धुवर ***सुदेश तनवर***
को, जिनकी बहुजन मुक्ति
की तीव्र ललक हममें ऊर्जा
का संचार करती है।

अनुक्रम

लेखकीय 7

वर्ग-शासन! 7, मार्क्स का वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत 8, हमने भारत के इतिहास को वर्ग-संघर्ष के नजरिये से नहीं देखा 9, आरक्षण में निहित : भारत में वर्ग संघर्ष 10, भारत के बहुजन सर्वहारा नहीं, सर्वस्वहारा! 10, सर्वस्व-हाराओं की बगावतें 11, मंडलवादी आरक्षण से आया : वर्ग-संघर्ष में नया मोड़ 11, आजादी के 70 सालों वाद भी सवर्ण ही इस देश के मालिक 12, ओबीसी की अग्रसर जातियों को 'हक़मार वर्ग' के रूप में चिन्हित करने के पीछे : मोदी! 13, आरक्षण के वर्गीकरण के लिए फिजा बनाने में व्यस्त : शासक वर्ग की मीडिया 14, अब गेंद आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों के नेताओं और बुद्धिजीवियों के पाले में चली गयी है 15, आरक्षण के वर्गीकरण के पीछे शासक वर्ग की मंशा! 15, आरक्षण और सत्ता में आपकी अपर्याप्त भागीदारी के लिए जिम्मेवार कौन! 16, आरक्षण के लिए जरुरी है शिक्षा और क्या इससे वंचित करने का काम कथित हक़मार जातियों ने किया है! 17, मूलनिवासी अब अपने बच्चों को आईएएस, पीसीएस, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर बनाने का सपना देखना छोड़ दें! 17, सत्ता में भागीदारी! 18, जरुरत है सोच बदलने की 18, अपना वजूद बचाने के लिए बहुजन-वर्ग में संगठित होना : इतिहास की बड़ी मांग 19, दक्षिण अफ्रीका और भारत के मूलनिवासियों में साम्यतायें 21, शासक वर्गों की शासितों के प्रति अनात्मीयता 21, बहुजनों की सापेक्षिक वंचना का सद्व्यवहार कर कायम हो सकती है : दक्षिण अफ्रीका जैसी तानाशाही सत्ता! 22, एक ही कमी : योग्य बहुजन नेतृत्व! 24, सापेक्षिक वंचना के सद्व्यवहार लिए आरक्षित वर्गों के बुद्धिजीवी और संगठनों को सामने आना होगा 24।

विमर्श की पृष्ठभूमि 27

हक़मार कौन! —एच.एल. दुसाध—27, **साक्षात्कार की प्रश्नावली** 30, **प्रश्नोत्तर** 33, बुद्ध शरण हंस—33, राजवंशी जे. ए. आंबेडकर—47, अरविंद

कुमार–50, विजय कुमार त्रिशरण–50, शीलबोधि–53

परिशिष्ट 60

एससी/एसटी में क्रीमी लेयर–Dilip C Mandal, पिन्कू प्रताप आंबेडकर, Narottam Mahanand, संजीव आदिवासी, Mahesh Sood, DA Kumar, Kush Saurabh, Bharat Patal, Amit Kumar, Mukesh Dongre, Viptsa Goutam, Ramkumar Maurya, Ajay Suman Kumar, RS Bouddh, Mohan Arya, रेखा सुर, Vikas Gour

सम्पादकीय–

डाइवर्सिटी सिद्धांत के प्रति लगाव रखने वाले मेरे नियमित पाठकों को यह भलीभांति विदित है कि मैने 2008 में 'तेज विकास की रोशनी से वंचित : बहुजन समाज' से आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं शृंखला की किताबें तैयार करने का सिलसिला शुरू किया। इसके पीछे मेरी मंशा यह रही कि मीडिया के अल्पकालिक प्रभाव के कारण जिन महत्वपूर्ण समस्यायों से एक अन्तराल के बाद विमुख होकर लोग समस्यायों के अंबार में घिरे भारत की दूसरी समस्यायों में खो जाते हैं, उन्हें यदि पुस्तक के रूप में देश के प्रबुद्ध विचारकों, साहित्यकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और राष्ट्र निर्माताओं के समक्ष परोसा जाय तो समस्या पर गंभीरता से बहस होगी और राष्ट्र इनका समाधान ढूंढने के लिए मन बनाएगा। इसीलिए मैंने बंधुवर बृजपाल भारती के उत्साहवर्द्धन से भारत की ज्वलंत समस्या सीरिज की पुस्तकें तैयार करने का मन बनाया। इस कारण ही 2008 में तेज विकास की रोशनी से वंचित : बहुजन समाज से जो सिलसिला शुरू किया उसके बाद एक-एक करके सच्चर रिपोर्ट के आईने में मुस्लिम समुदाय की समस्या और समाधान (2008), सेज पर सवाल और नंदी ग्राम में बवाल (2008), आरक्षण पर संघर्ष (2008), आस्था पर अभिव्यक्ति का हमला (2008), भूमंडलीकरण के दौर में ब्राह्मणवाद कितनी बड़ी समस्या (2008), सामाजिक न्याय की राजनीति की हार (2009), मुद्दाविहीन चुनाव में डाइवर्सिटी (2009), स्वतन्त्र मुस्लिम राजनीति की संभावनाएं (2009), महिला सशक्तीकरण में बाधक : शक्ति के केन्द्रों में लैंगिक विविधता की अनदेखी (2010), नक्सलवाद के प्रतिकार का सर्वोत्तम उपाय : डाइवर्सिटी (2010), जाति जनगणना की चुनौतियाँ (2010), हिंदी पट्टी की बदहाली का हल (2010), अरब जनविद्रोह के आईने में : भारत में क्रांति की सम्भावना (2011), जाति उन्मूलन : मार्क्सवादी बनाम आंबेडकरवादी परियोजना (2013), भगाणा की निर्भायायें (2014), कैसे हो संविधान के उद्देश्यों की पूर्ति (2016), शैक्षणिक परिसरों में पसरा भेदभाव : सवर्ण वर्चस्व का परिणाम (2016) और धन के न्यायपूर्ण बंटवारे के लिए सर्वव्यापी आरक्षण की जरूरत (2018) जैसी कुल 20 किताबें आयीं। इसी कड़ी में यह नयी किताब है, जिसमें शोषक अर्थात हक़मार वर्ग चिन्हित करने का प्रयास हुआ है। जहाँ तक हक़मार वर्ग के चिन्हित करने का प्रश्न है, इस विषय में महापंडित राहुल सांकृत्यायन की वर्ग-संघर्ष से जुड़ी यह टिपण्णी बहुत सहायक हो सकती है, जो उन्होंने अपनी किताब 'कार्ल मार्क्स' का विषय प्रवेश करते हुए लिखा है।

वर्ग-शासन!

'वर्ग-शासन शुरू हुए हजारों वर्ष हो गए। जिस वर्ग के हाथ में आर्थिक साधन तथा संपत्ति थी, उसी के हाथ में शासन था और उसने इसी शक्ति के बल पर निर्बलों का शोषण किया। इन हजारों वर्षों में समाज के तरह-तरह विकास होते हुए भी, हमने जनता की अधिक संख्या को सारे संसार के भरण-पोषण का भार वहन करते, भूख और दीनता की चक्की में पिसते देखा, जबकि उन्हीं के श्रम बल पर चंद व्यक्ति बड़े सुख और विलास का जीवन बिताते रहे।

इन चंद व्यक्तियों ने दूसरे के धन, स्त्री या स्वतंत्रता के अपहरण के लिए युद्ध घोषित किया और बहुसंख्य जन मृत्यु के मुंह में पड़े। इन चंद व्यक्तियों ने जनों के लिए कानून बनाये तुम्हे इस परिस्थिति में यह काम करना होगा, तुम्हें श्रम के लिए इस तरह से वेतन मिलेगा, तुम्हे इस तरह सोचना, बोलना और चलना होगा, और लोग वैसा करते रहे। उन्होंने हाल तक, असह्य होने पर चंद छोटी-छोटी बगावतों को छोड़कर, चुपचाप सारे अत्याचारों को सहा।

लेकिन इन हजारों वर्षों में बहु-संख्यकों पर होते दारुण अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने वाले, उत्पीड़न-शून्य नए समाज का स्वप्न देखने वाले भी जरुर पैदा हुए, यद्यपि उनकी संख्या कम थी, उनकी आवाज क्षीण थी, किन्तु शोषण, उत्पीड़न के बढ़ाव के साथ यह क्षीण आवाज भी ऊँची होती गयी। मगर जब तक यह आवाज अवास्तविक तथा आकाश से आती रही, तबतक उसमें वह ताकत नहीं आई, जो कि ठोस पृथ्वी-तल से उसके घने वायुमंडल में गूंजने पर पिछली एक शताब्दी के भीतर देखि गयी।

मानव समाज की आर्थिक विषमतायें ही वह मर्ज हैं, जिसके कारण मानव-समाज में दूसरी विषमतायें और असह्य वेदनाएं देखी जाती हैं। इन वेदनाओं का अनुभव हर देश-काल में मानवता प्रेमियों और महान विचारकों ने किया। भारत में बुद्ध (563-483 ई.पू.), चीन में मो-ती (480-400 ई.पू.), ईरान में मज्दक (519 ई.), तिब्बत में मुने-चुने पां (1846 ई.), यहूदी संतों में अमां (800 ई.पू.), इसैया (746-700 ई.पू.), यूरोप में अफलातून (427 ई.पू.), सैनेका (ई.पू. 65), सवोनरोला (145-298 ई.), आन्द्रेयाये, पीटर चैंबरलैंड (1649 ई.), वाल्टेयर (1649 ई.), टॉमस स्पेन्स (1750 ई.), विलियम गाडविन (1793 ई.), सेंट साइमन (1760 ई.), प्रुधो (1809 ई.), चार्ल्स हाल (1805 ई.), रॉबर्ट आवेन (1771 ई.) जैसे अनेक विचारक प्रायः ढ़ाई हजार सालों तक उस समाज का सपना देखते रहे जिसमें मानव-मानव समान होंगे, उनमें कोई आर्थिक विषमता नहीं होगी : लूट खसोट, शोषण-उत्पीड़न से वर्जित मानव संसार उस वर्ग का रूप धारण करेगा, जिसका लाभ भिन्न-भिन्न धर्म मरने के बाद देते हैं। लेकिन विषमता हटाने और साम्यवाद का सपना देखने वाले उस साधन को न पा सके, न बतला सके जिसके द्वारा सामाजिक विषमता हटाई जा सके। पूर्वी और पश्चिमी संतों ने इसका उपाय हृदय परिवर्तन को बतलाया। पुराने जमाने के लोगों की बात छोड़िये, बीसवीं सदी में भी महात्मा गांधी जी जैसे बहुत से पुरुष हृदय परिवर्तन द्वारा समानता की स्थापना करना चाहते थे।

ढ़ाई हजार वर्षों में भिन्न-भिन्न स्वप्नद्रष्टाओं ने साम्यवादी समाज को लाने के लिए जो भी सोचा किया था, उसके लिए मौखिक ही नहीं, बहुतों ने क्रिया के रूप में भी परिणत करना चाहा और भारी बलिदान के साथ। ईरान के मज्दक ने अपनी और अपने लाखों अनुयायियों की जानें इसी प्रयत्न में गवाई। लेकिन विषमता हटाने की समस्या वैसी की वैसी बनी रही। इस समस्या को हल करने का जिसने वैज्ञानिक ढंग निकाला, जिसने इस रोग का बारीकी के साथ अध्ययन किया और उसकी औषधि को भी परख-परख कर देखा, वह मार्क्स वस्तुतः नए युग का विधाता, नए संसार के निर्माताओं में सर्वश्रेष्ठ विचारक था।'

मार्क्स का वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत

बहरहाल भूमंडलीकरण के दौर में साम्यवाद के यूटोपिया बनते तथा पूंजीवाद के सैलाब

में एक-एक करके मार्क्सवाद के दुर्गों को ढ़हते देखकर भी हमें यह स्वीकार यह स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिए कि मार्क्स ने ही 'आर्थिक गैर-बराबरी' को मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या के रूप में चिन्हित करने जैसा ऐतिहासिक चिंतन तथा इसके खात्मे के सिलसिले में शोषक अर्थात हक़मार वर्ग को भी चिन्हित किया। इस सिलसिले में उसने यह सिद्धांत स्थापित किया कि अब तक विद्यमान सभी समाजों का लिखित इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। उसने विषमता के पृष्ठ में इस तथ्य को स्थापित किया कि समाज में सदैव ही विरोधी आर्थिक वर्गों का अस्तित्व रहा है। एक वर्ग वह है जिसके पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व है और दूसरा वह है, जो केवल शारीरिक श्रम करता है। पहला वर्ग सदैव ही दूसरे का शोषण करता रहा है। मार्क्स के अनुसार समाज के शोषक और शोषित : ये दो वर्ग सदा ही आपस में संघर्षरत रहे और इनमें आपस में कहीं भी समझौता नहीं हो सकता। मार्क्स का कहना है, 'नागर समाज में विभिन्न व्यक्तियों और वर्गों के बीच होने वाली होड़ का विस्तार राज्य तक होता है। प्रभुत्वशाली वर्ग अपने हितों को पूरा करने और दूसरे वर्ग पर अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए राज्य का उपयोग करता है।'

हमने भारत के इतिहास को वर्ग-संघर्ष के नजरिये से नही देखा

मुझे लगता है मार्क्सवाद में कुछ कमियों और सवालों के बावजूद समतामूलक समाज निर्माण के लिए मार्क्स की वर्ग-संघर्ष की व्याख्या निर्भूल और अकाट्य सिद्धान्त है। लेकिन भारी अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि मार्क्स की इस कालजयी क्रांतिकारी थ्योरी को भारत में स्थापित नहीं होने दिया गया। कारण दो रहे। पहला, भारत में मार्क्सवाद का नेतृत्व जिनके हाथ में रहा वे सवर्ण पर्याप्त ज्ञानी-गुनी होकर भी अपने स्व-वर्णीय/वर्गीय हित में इसे स्थापित नहीं होने दिए तथा वर्गों का चिन्हीकरण में रूचि नहीं लिए। दूसरा, वंचित बहुजन समाज के आन्दोलनकारी आर्थिक कष्टों के निवारण में अरुचि रखने के कारण, इस विषय में सोचने की जहमत ही नहीं उठाये। वे बहुत गर्व के साथ कहते रहे भारत में वर्ग-संघर्ष नहीं, वर्ण-संघर्ष चलेगा। उनका यह भी तर्क रहा कि मार्क्स का यह सिद्धांत यूरोप की क्लास-सोसाइटी में उपयोगी है, जाति समाज भारत के लिए यह असरदार नहीं है। अवश्य ही कांशीराम अपवाद रहे, जिन्होंने भारत की गणतांत्रिक व्यवस्था में वर्ग-संघर्ष को उभारने का भरपूर प्रयास किया। इसलिए ही वे बहुजन की थ्योरी विकसित करने में सफल हुए। लेकिन ब्राह्मणवाद को ही सभी समस्यायों की जड़ मानने तथा आर्थिक विषमता की समस्या से लगभग पूरी तरह निर्लिप्त रहने के कारण उनके अनुसरणकारी बहुजनवाद की जमीन पर वर्ग-संघर्ष का महल खड़ा न कर सके। आज की तारीख में जबकि बहुजनों का सब कुछ तहस-नहस हो चुका है : शासकों द्वारा राज्य का इस्तेमाल करके बहुसंख्य वंचितों को गुलामी की ओर ठेल दिया गया है, इसकी निहायत ही जरुरत थी। बहरहाल बहुसंख्य वंचितों की ओर से जो नहीं हुआ, हाल के दिनों में उस दिशा में शासक वर्ग समर्थित प्रभुत्वशाली जातियों की मीडिया, न्यायाधीश, लेखक-बुद्धिजीवी अग्रसर हुए और आरक्षित वर्गों की कुछ अग्रसर जातियों को हक़मार वर्ग के रूप में चिन्हित करने का अभूतपूर्व प्रयास शुरू कर दिये हैं। यह अभियान कब और किन परिस्थितियों में शुरू हुआ, इस पर हक़मार कौन! नामक आलेख में विस्तार से रौशनी डाली गयी है।

आरक्षण में निहित : भारत में वर्ग संघर्ष

बहरहाल भारत के प्रभुवर्ग और बहुसंख्य समाज के एक्टिविस्टों और बुद्धिजीवियों द्वारा भारत में मार्क्स के वर्ग संघर्ष की भारी अनदेखी किये जाने के बावजूद यही सत्य है कि विश्व इतिहास में सबसे पहले वर्ग संघर्ष का चरित्र भारत की आरक्षण व्यवस्था में विकसित हुआ। अगर वर्ण-व्यवस्था के अर्थशास्त्र पर दृष्टि निक्षेप की जाय तो यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा कि मार्क्स के अनुसार अगर दुनिया का इतिहास वर्ग और आर्थिक संघर्ष का इतिहास है तो भारत में वह आरक्षण पर केन्द्रित संघर्ष का इतिहास है। कारण, हिन्दू-धर्म का प्राणाधार जिस वर्ण-व्यवस्था के द्वारा यह देश सदियों से परिचालित होता रहा है, वह मूलतः संपदा संसाधनों मार्क्स के शब्दों में उत्पादन के साधनों के बँटवारे की व्यवस्था रही। चूँकि वर्ण-व्यवस्था में विविध वर्णों अर्थात विविध सामाजिक समूहों के पेशे/कर्म तय रहे तथा इन पेशों की विचलनशीलता (Professional mobility) धर्मशास्त्रों द्वारा पूरी तरह निषिद्ध (Prohibited) रही, इसलिए वर्ण-व्यवस्था एक आरक्षण व्यवस्था का रूप ले ली, जिसे हिन्दू आरक्षण कहा जा सकता है। हिन्दू आरक्षण में शक्ति के समस्त स्रोत—आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, धार्मिक इत्यादि-वर्ण व्यस्था के प्रवर्तकों द्वारा सुपरिकल्पित रूप से चिरकाल के तीन उच्च वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों-के लिए आरक्षित किये गए। इस हिन्दू आरक्षण में शुद्रातिशूद्रों के लिए आरक्षित हुई सिर्फ तीन उच्च वर्णों की सेवा,वह भी पारिश्रमिकरहित। वर्ण-व्यवस्था के इस आरक्षणवादी चरित्र के कारण चिरकाल के लिए दो वर्गों का निर्माण हुआ। एक, विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न अल्पजन सवर्ण तथा दूसरा दलित-आदिवासी और पिछड़ों से युक्त वंचित बहुजन समाज।

भारत के बहुजन सर्वहारा नही, सर्वस्वहारा!

मार्क्स ने अपने सर्वहारा वर्ग के चरित्र को उकेरते हुए कहा है कि उत्पादन के साधनों से वंचित यह वर्ग सिर्फ श्रम पर निर्भर रहता है : श्रम के विनिमय में ही वह भरण पोषण करते रहता है। अब यदि मार्क्स के उस सर्वहारा वर्ग से बहुजन समाज की तुलना की जाय तो यह विशुद्ध सर्वस्व-हारा के रूप में नजर आएगा। मार्क्स के सर्वहारा सिर्फ आर्थिक रूप से वंचित थे, लेकिन उनके लिए शिक्षालयों और देवालयों के द्वार हमेशा मुक्त रहे। यही नहीं राजनीतिक क्रियाकलाप भी उनके लिए निषिद्ध नहीं रहे। विपरीत उनके बहुजनों के लिए हजारों साल से शिक्षालयों और देवालयों के द्वार पूरी तरह निषिद्ध रहे। राजनीतिक गतिविधियां भी पूरी तरह निषिद्ध रहीं। यहाँ तक कि भारत के बहुजनों को अच्छा नाम तक रखना पूरी तरह मना रहा। अब जहाँ तक श्रम बेचने का सवाल है शैक्षिक, धार्मिक, राजनीतिक अधिकारों से समृद्ध मार्क्स के सर्वहारा की समस्या मात्र वाजिब पारिश्रमिक रही। लेकिन भारत के सर्वस्वहारा तो सिर्फ श्रम के लिए ही बने थे, वह भी प्राय वेतन रहित श्रमिक। वर्ण-व्यवस्था के प्रावधानों के तहत वे पीढ़ी दर पीढ़ी उत्पादन के साधनों के स्वामी सवर्ण वर्ग की सेवा के लिए ही अभिशप्त रहे। किन्तु ये मार्क्स के सर्वहारा की भांति भाग्यवान नहीं रहे। इन्हें अपने श्रम के विनिमय में पारिश्रमिक मांगने का कोई अधिकार नहीं रहा। ये पेट भरने के लिए उत्पादन के साधनों के स्वामियों के जूठन और तन ढकने के लिए उनके उतरन पर पर निर्भर

रहे। अतः भारत के जन्मजात शोषितों को सर्वहारा नहीं सर्वस्वहारा ही कहना उचित होगा। सर्वस्वहारोंओं की दारुण स्थित क्या यह नहीं सिद्ध करतीं कि भारत जैसी वर्ग-संघर्ष की आदर्श स्थितियां विश्व में शायद ही अन्यत्र रही हों!

सर्वस्व-हाराओं की बगावतें

बहरहाल महापंडित राहुल ने वर्ग-शासन की व्याख्या करने के क्रम में शोषितों के विषय में बताया है कि वे चंद छोटी-छोटी बगावतों को छोड़कर, चुपचाप सारे अत्यचार सहते रहे। इस हिसाब से भारत के सर्वस्वहारा भी चुपचाप अत्याचार सहते रहे,लेकिन उन्होंने भी चंद बगावतें कीं। उनकी यह बगावतें हिन्दू आरक्षण अर्थात वर्ण-व्यवस्था के प्रवधानों के खिलाफ थीं, जिसको मध्य युग में संत रैदास, कबीर, चोखामेला, तुकाराम इत्यादि जैसे संत तो आधुनिक भारत में फुले-शाहूजी-पेरियार-नारायणा गुरु-संत गाडगे इत्यादि और सर्वोपरि उस आंबेडकर ने नेतृत्व दिया,जिनके प्रयास से ही वर्ण-व्यवस्थावादी आरक्षण टूटा और संविधान में आधुनिक आरक्षण का प्रावधान संयोजित हुआ। इसके फलस्वरूप सदियों से बंद शक्ति के स्रोत बहुसंख्य सर्वस्वहाराओं के लिए भी मुक्त हुए।

मंडलवादी आरक्षण से आया : वर्ग-संघर्ष में नया मोड़

हजारों साल से भारत के विशेषाधिकारयुक्त जन्मजात सुविधाभोगी और वंचित बहुजन समाज : दो वर्गों के मध्य आरक्षण पर जो अनवरत संघर्ष जारी रहा, उसमें 7 अगस्त, 1990 को मंडल की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद एक नया मोड़ आ गया। इसके बाद शुरू हुआ आरक्षण पर संघर्ष का एक नया दौर। मंडलवादी आरक्षण ने परम्परागत सुविधाभोगी वर्ग को सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत अवसरों से वंचित एवं राजनीतिक रूप से लाचार समूह में तब्दील कर दिया। मंडलवादी आरक्षण से हुई इस क्षति की भरपाई ही दरअसल मंडल उत्तरकाल में सुविधाभोगी वर्ग के संघर्ष का प्रधान लक्ष्य रही। कहना न होगा 24 जुलाई, 1991 को गृहित नवउदारवादी अर्थनीति को हथियार बनाकर भारत के शासक वर्ग ने, जो विशेषाधिकारयुक्त सुविधाभोगी वर्ग से रहे, मंडल से हुई क्षति का भरपाई कर लिया। मंडलवादी आरक्षण लागू होते समय कोई कल्पना नहीं कर सकता था पर, यह अप्रिय सचाई है कि आज की तारीख में हिन्दू आरक्षण के सुविधाभोगी वर्ग का धन-दौलत सहित राज-सत्ता, धर्म-सत्ता, ज्ञान-सत्ता पर 90 प्रतिशत से ज्यादा कब्ज़ा हो गया है, जिसमें पीवी नरसिंह राव, अटल बिहारी वाजपेयी और डॉ. मनमोहन सिंह की विराट भूमिका रही। किन्तु, इस मामले में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने पूर्ववर्तियों को मीलों पीछे छोड़ दिया है। इनके ही राजत्व में मंडल से हुई क्षति की कल्पनातीत रूप से हुई भरपाई। सबसे बड़ी बात तो यह हुई है कि जो आरक्षण आरक्षित वर्गों, विशेषकर दलितों के धनार्जन का एकमात्र स्रोत था, वह मोदी राज में लगभग शेष कर दिया गया है, जिससे वे बड़ी तेजी से विशुद्ध गुलाम में तब्दील होने जा रहे हैं। आरक्षण पर संघर्ष के इतिहास में आज के लोकतांत्रिक युग में परम्परागत सुविधाभोगी वर्ग की इससे बड़ी विजय और क्या हो सकती थी। जिस नवउदारवादी अर्थनीति को हथियार बनाकर भारत के शोषक वर्गों ने नयी सदी के वर्ग-संघर्ष में विजय प्राप्त की, उससे भारत में शोषक वर्ग का एक नया चेहरा उभर

कर आया, जिसका निर्भूल चित्र शीलबोधि के लेख में उभरा है।

बहरहाल मोदी राज में जिस तरह आरक्षण के खात्मे का अभूतपूर्व अभियान चला, उन्हीं सब कारणों से मैंने 'हक़मार कौन!' नामक लेख में लिखा है-'मोदी सरकार आरक्षित वर्गों के प्रति इतनी निर्मम रही है कि एक ओर जहाँ यह निजीकरण, विनिवेशीकरण इत्यादि के जरिये सरकारी नौकरियों के खात्मे में पूरी तरह मुस्तैद रही, वहीं दूसरी ओर बची-खुची सरकारी नौकरियों की वैकेन्सी निकालने में तरह-तरह का षड्यंत्र करती रही। खुद मोदी सरकार ने मार्च 2016 में माना कि 2013 से 2015 के बीच केंद्र सरकार की नौकरियों में करीब 89 प्रतिशत गिरावट आई है। तब राज्य मंत्री जितेन्द्र कुमार ने संसद में बताया था कि 2013 में 1,51,841 सीधी नौकरिया दी गयीं थी, जो 2014 में घटकर 1,26,261 रह गयीं और 2015 में केवल 15,877 लोगों की सीधी भर्ती की गयी। इसका मतलब यह हुआ कि 2013 से 2015 के बीच आरक्षित वर्ग की नौकरियों में 90 प्रतिशत की गिरावट आई। एससी/एसटी और पिछड़े वर्गों के लिए निर्धारित आरक्षण के जरिये 2013 में 92,928 लोगों को नौकरी मिली थी। 2014 में यह तादाद 72,077 थी जो 2015 में महज 8,436 तक सिमट कर रह गयी। अब भाजपा के केन्द्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने 5 अगस्त, 2018 को स्पष्ट घोषणा कर दिया है कि सरकारी नौकरियां नहीं हैं और जब नौकरियां ही नहीं हैं तो आरक्षण का भी कोई अर्थ नहीं है!। तो यह है उस मोदी सरकार की कारगुजारी जो आरक्षण को पूरी तरह कागजों की शोभा बनाने के साथ सरकारी नौकरियों को कपूर की भाँति उड़ा चुकी है। कागजों की शोभा बन चुके उसी आरक्षण में आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों को वाजिब हिस्सेदारी दिलाने के लिए मोदी आज आरक्षण में वर्गीकरण कर सामाजिक न्याय के नए मसीहा बनने की तैयारियों में जुट गए हैं। और अगर उनके सामाजिक न्याय की मुहिम सफल हो जाती है तो उसका हस्र एक रोटी के लिए कलहरत उन दो बिल्लियों जैसा हो जायेगा, जिनके मध्य रोटी का वाजिब बंटवारा करते-करते जज बना एक बन्दर पूरी रोटी ही खा गया और बिल्लियाँ देखती रह गयीं।' यह सचाई है कि भारत में वर्ग-संघर्ष आरक्षण के संघर्ष में निहित है इसलिए मोदी अपने वर्गीय हित में अब स्कूल,कॉलेज, रेलवे, स्टेशन, अस्पताल इत्यादि निजी हाथों में देने के लिए मुस्तैद हो गए हैं, ताकि फुले से लगाये डॉ. आंबेडकर के प्रयत्नों से जो आरक्षण सर्वस्व-हाराओं को मुख्यधारा में लाने का माध्यम बना, वह कागजों की शोभा मात्र बनकर रह जाए।

आजादी के 70 सालों वाद भी सवर्ण ही इस देश के मालिक

शासक वर्ग ने निजीकरण, उदारीकरण, भूमंडलीकारण और विनिवेशीकारण को हथियार बनाकर नयी सदी में जो अपना वर्चस्व कायम किया है, उसकी एक झलक निम्न पैरे में देखि जा सकती है!

'भारत सरकार के आंकड़ों के अनुसार सरकारी तंत्र पर अभी भी सवर्णों का वर्चस्व और नियंत्रण कायम है। केंद्रीय कार्मिक मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 1 जनवरी 2016 को जारी आंकड़े बताते हैं कि केंद्र सरकार में ग्रुप ए की कुल नौकरियों की संख्या 84 हजार 521 है। इसमें 57 हजार 202 पर सामान्य वर्गों (सवर्णों) का कब्जा है। यह कुल नौकरियों का 67.66 प्रतिशत होता है। इसका अर्थ है कि 15-16 प्रतिशत सवर्णों ने करीब 68 प्रतिशत ग्रुप

ए के पदों पर कब्जा कर रखा है और देश की आबादी को 85 प्रतिशत ओबीसी, दलित और आदिवासियों के स्सि्से में सिर्फ 32 प्रतिशत पद हैं। इसमें 11 हजार 312 पद एससी, 11 हजार 002 पद ओबीसी और 5 हजार 5 पद एसटी के वर्ग के लोगों के पास है। ध्यान देने की बात यह है कि करीब 52 प्रतिशत ओबीसी के हिस्से सिर्फ 13.01 प्रतिशत है। इसका कारण है कि ओबीसी को 1992 में आरक्षण प्राप्त हुआ। ओबीसी संबंधी तथ्य यह भी बताता है कि बिना आरक्षण के इन वंचित तबकों को ह्स्सिेदारी मिलना नामुमकिन सा है।

ग्रुप ए के दो तिहाई पदों पर सवर्णों के नियंत्रण का अर्थ है कि देश की नौकरशाही पर सवर्णों का कमोवेश पूर्ण नियंत्रण और वर्चस्व है। हम सभी जानते हैं कि केंद्र सरकरा द्वारा निर्णयों के लेने और उसे लागू करने में नौकरशाहों की सबसे निर्णायक भूमिका होती है। यदि इसी पर उनका पूर्ण नियंत्रण है, तो कोई अंदाज लगा सकता है कि इसका नतीजा क्या होगा?

इन तथ्यों को एक और नजरिये से भी देखना जरूरी है। सवर्ण जाति के लोग अक्सर ओबीसी, दलितों और आदिवासियों के आरक्षण के खात्मे की मांग करते हैं, उन्हें यह नहीं दिखाई देता कि आजादी के बाद भी मनु द्वारा उनके लिए किया गया आरक्षण कमोवेश पूरी तरह कायम है और सदियों से चले आ रहे सवर्णों के आरक्षण को तोड़ने के लिए संविधान ने जो आरक्षण शूद्रों-अतिशूद्रों को दिया था,वह आरक्षण सवर्णों का आरक्षण तोड़ नहीं पाया है। इसके साथ ही आरक्षित तबकों के कुछ लोग इस खुशफहमी में रहते हैं कि उनकी हैसियत काफी बढ़ गई है, जबकि सच्चाई यह है कि सरकारी तंत्र पर सवर्णों का पूर्ण वर्चस्व और नियंत्रण कायम है। अब ग्रुप बी के पदों को लेते हैं। इस ग्रुप में 2 लाख 90 हजार 598 पद हैं। इसमें से 1 लाख 80 हजार 130 पदों पर अनारक्षित वर्गों का कब्जा है। यह ग्रुप बी की कुल नौकरियों का 61.98 प्रतिशत है। इसका मतलब है कि ग्रुप बी के पदों पर भी सर्वण जातियों का ही कब्जा है। यहां भी 85 प्रतिशत आरक्षित संवर्ग के लोगों को सिर्फ 28 प्रतिशत की ही हिस्सेदारी है। कुछ ज्यादा बेहतर स्थित ग्रुप सी में भी नहीं है। ग्रुप सी के 28 लाख 33 हजार 696 पदों में से 14 लाख 55 हजार 389 पदों पर अनारक्षित वर्गों (अधिकांश सवर्ण) का ही कब्जा है। यानी 51.36 प्रतिशत पदों पर। आधे से अधिक है। हां, सफाई कर्मचारियों का एक ऐसा संवर्ग है, जिसमें एससी,एसटी और ओबीसी 50 प्रतिशत से अधिक है। इस प्रकार यदि हम भारत सरकार के इस आंकडे को देखें तो साफ तौर पर दिखेगा कि वर्ण व्यवस्था लागू है। सनद रहे कि सरकारी नौकरियों में संविधान के जरिये बहुजनों को 49.5 प्रतिशत जगहें सुनिश्चित की गयी हैं। बावजूद इसके इन पर सवर्णों का उनके जनसंख्यानुपात से कई गुना दबदबा है। लेकिन सप्लाई, डीलरशिप, ठेकों, फिल्म-मीडिया जैसे धनार्जन के स्रोतों पर आरक्षण नहीं होने से 90 प्रतिशत से ज्यादा कब्जा है। इस प्रकार पायेंगे कि आजादी के 70 सालों वाद भी सवर्ण ही इस देश के मालिक हैं।'

ओबीसी की अग्रसर जातियों को 'हक़मार वर्ग' के रूप में चिन्हित करने के पीछे : मोदी!

बहरहाल मार्क्स ने अपने वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को प्रतिपादित करने के क्रम में कहा है, 'प्रभुत्वशाली वर्ग (भारत के सन्दर्भ में सवर्ण) अपने हितों को पूरा करने और दूसरे वर्ग पर

अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए राज्य का उपयोग करता है।' विरोधी वर्ग पर प्रभुत्वशाली वर्ग द्वारा अपना प्रभुत्व कायम करने का जो सिद्धांत मार्क्स ने दिया, उसका अधूना रूप आज के भारत में आँख-कान खुला रखने वाला हर व्यक्ति देख सकता है।

मंडल के विरुद्ध कमंडल का आन्दोलन छेड़कर सत्ता में आई चैम्पियन सवर्णवादी भाजपा के नरेंद्र मोदी आज अपने वर्ग-शत्रुओं (बहुजनों) के शेष करने के जूनून में आरक्षण के खिलाफ एक अघोषित युद्ध छेड़ दिए हैं। वही मोदी सामाजिक न्याय का एक नया मसीहा बनने के लिए गत वर्ष आरक्षण के वर्गीकरण में राज्य की मशीनरी का इस्तेमाल करने के लिए जोर-शोर से आगे बढ़े। उनके केन्द्रीय कैबिनेट ने 23 अगस्त, 2018 को ओबीसी की केन्द्रीय सूचि में वर्गीकरण के लिए एक आयोग बनाने की मंजूरी दी और बिना देर किये 2 अक्तूबर, 2018 को दिल्ली हाई कोर्ट की पूर्व जस्टिस जी. रोहिणी की अध्यक्षता में एक आयोग भी गठित कर दिया। इन पक्तियों के लिए जाने के दौरान इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट भी सौंप दी है। खबर है कि इसमें ओबीसी आरक्षण को 9-9 प्रतिशत करके तीन भागों में बांटा गया है।

आरक्षण के वर्गीकरण के लिए फिजा बनाने में व्यस्त : शासक वर्ग की मीडिया

तब मोदी सरकार द्वारा पिछड़ा वर्ग आयोग गठित होते ही प्रभुत्वशाली वर्ग की मीडिया में खुशी की लहर दौड़ गयी थी। लेकिन शासक वर्ग की मीडिया को सिर्फ ओबीसी आरक्षण में ही वर्गीकरण से कहाँ चैन मिलने वाला था! लिहाजा उन्हीं दिनों वे एससी/एसटी के आरक्षण में वर्गीकरण की भी फिजा बनाने में जुट गये, जो आजतक जारी है। इसकी झलक 13 अगस्त, 2018 की भाजपा समर्थित अख़बार दैनिक जागरण की निम्न टिप्पणी में देख सकते हैं-:

'अन्य पिछड़े वर्गों की जातियों के उपवर्गीकरण की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए गठित रोहिणी आयोग की ओर से मिले संकेत यदि यह रेखांकित कर रहे हैं कि ओबीसी आरक्षण का लाभ चुनिंदा जातियों ने उठाया है तो इसमें हैरानी नहीं। इस स्थिति को बयान करने वाले आंकड़े उपलब्ध भले ही न हो, लेकिन हर कोई यह जान रहा है कि हकीकत क्या है। यह विसंगति केवल ओबीसी आरक्षण तक ही सीमित नहीं है। यही हाल अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को मिले आरक्षण में भी है। अब जब ओबीसी आरक्षण की दिशा में कदम उठाये जा रहे हैं तो यह जरुरी हो जाता है कि एससी-एसटी आरक्षण में भी ऐसा हो। नीति-नियंता और राजनीतिक दल इससे अनभिज्ञ नहीं हो सकते कि यह आरक्षण में विसंगति अर्थात सभी पात्र जातियों को समुचित लाभ न मिल पाने का ही प्रतिफल है।...यदि समर्थ जातियों के लोग आरक्षण का लाभ लेते रहेंगे तो वे कहीं न कहीं अन्य ऐसी जातियों का हक़ मारते रहेंगे जो आरक्षण के दायरे में रहने के बावजूद उसके न्यूनतम लाभ से वंचित हैं। समय आ गया है कि न केवल ओबीसी आरक्षण के तहत आने वाली जातियों का उपवर्गीकरण हो, बल्कि उन जातियों को आरक्षण के दायरे से अलग भी किया जाय जो अब आरक्षण का पात्र नहीं रह गयी हैं। हालाँकि क्रीमी लेयर की व्यवस्था इसी मकसद से की गयी है, लेकिन उससे अभीष्ट की पूर्ति नहीं हो पा रही है। पता नहीं ऐसी कोई व्यवस्था एससी-एसटी आरक्षण में क्यों नहीं है?'

तो सरकार के मुख पत्र के रूप में काम कर रहे अख़बार आरक्षण की विसंगति दूर करने

लिए केवल क्रीमी लेयर से संतुष्ट नहीं हैं : वे चाहते हैं कि आरक्षित वर्गों की अग्रसर जातियां आरक्षण के दायरे से बाहर जाएँ। इन अख़बारों के माध्यम से शासक वर्ग ही ऐसा जनमत निर्माण में जुट गया है, जिसे भारत में वर्ग-संघर्ष का एक पार्ट मानना ही समीचीन होगा।

अब गेंद आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों के नेताओं और बुद्धिजीवियों के पाले में चली गयी है

बहरहाल यह तय सा दिख रहा है कि चैम्पियन सवर्णवादी मोदी सरकार आरक्षित वर्ग की पिछड़ी जातियों को न्याय दिलाने के लिए ओबीसी ही नहीं, एससी/एसटी के आरक्षण का वर्गीकरण करेगी ही करेगी। ऐसे में अब गेंद आरक्षित वर्गों की अतिपिछड़ी जातियों के पाले में चली गयी है और वे 'गेम चेंजर' के रोल में आ गयी हैं। जैसा कि मैंने अपने लेख 'हक़मार कौन!' में निष्कर्ष दिया है, 'ऐसे में अब ओबीसी और एससी/एसटी के आरक्षित वगों की पिछड़ी जातियों के समक्ष दो ही ठोस विकल्प रह गए हैं। पहला, वे सामाजिक न्याय के नए मसीहा मोदी के साथ मिलकर अपने हक़मार भाइयों को अलग-थलग करने की मुहिम में जुट जाएँ, ताकि कागजों की शोभा बन चुके आरक्षण में अपना वाजिब हिस्सा पा सकें। दूसरा, अपने हक़मार भाइयों के साथ मिलकर धनार्जन के समस्त स्रोतों में- जिसकी जितनी सख्या भारी,उसकी उतनी भागीदारी- की नीति लागू करवाने की लड़ाई लड़ें और यह लड़ाई जीतने के बाद फिर आपस में मिलकर नए सिरे से आरक्षण बंटवारा कर लें! और यदि क्रांतिकारी बदलाव की इच्छाशक्ति हो तो संगठित होकर भारत को आज का दक्षिण अफ्रीका बनाने का प्रयास करें।

आरक्षण के वर्गीकरण के पीछे शासक वर्ग की मंशा!

लेकिन कोई निर्णय लेने के पहले मैं आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों के नेताओं और बुद्धिजीवियों के समक्ष कुछ विचार करने की अपील करूँगा। पहला, इस वर्गीकरण के पीछे उन वर्गों, जो हजारों साल से बहुजन समाज को मानवेतर बनाने और हमारे मुक्तिदाता डॉ. आंबेडकर प्रदत संवैधानिक अधिकारों से वंचित करने में सर्वशक्ति लगाने के अभ्यस्त रहे हैं, उनकी पसंदीदी पार्टी, जो मंडल उत्तरकाल में आरक्षण-विरोध के घोड़े पर ही सवार होकर आज केंद्र की सत्ता पर मजबूती से कायम है एवं जिसके एक बड़े मंत्री गत 5 अगस्त, 2018 को घोषणा कर चुके हैं कि सरकारी नौकरियां खत्म हो चुकी हैं, इसलिए आरक्षण का कोई अर्थ नहीं रह गया है, यदि आपको न्याय दिलाने के नाम पर आरक्षण का वर्गीकरण करने जा रही है तो उसके पीछे उसकी मंशा क्या हो सकती है, इसे समझें। इस विषय में पुस्तक में छपे लेखों और साक्षात्कारों के जरिये जो निष्कर्ष आये हैं, वे हैं-:

1. ताकि योग्य अभ्यर्थी न मिलने के नाम पर सीटें उन 15% अनारक्षित वर्गों को सुलभ करा दी जाएं, जिनका पहले से 50% अघोषित आरक्षण है ही, एवं जो व्यवहारिक रूप में 65-70% के बीच है;
2. जिन मूलनिवासियों को साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व विदेश से आया शासक समाज कई हजार भागों में बांटकर शक्ति के तमाम स्रोतों पर अपना कब्जा कायम रखा,

बहुजन के रूप में परस्पर बंधुत्व भाव लिए संगठित हो रहे उन मूलनिवासियों की एकता को छिन्न-भिन्न करना;

3. आरक्षित वर्गों की उन जातियों को अलग-थलग करना, जो शासक वर्गों के खिलाफ प्रतिरोध खड़ा करती रहीं हैं और
4. आज की तारीख में आरक्षित वर्गों के बुद्धिजीवी/एक्टिविस्ट मिलकर सभी प्रकार की नौकरियों सहित, सप्लाई, डीलरशिप, ठेकों, पार्किंग-परिवहन, ज्ञान के सभी केन्द्रों, फिल्म-मीडिया इत्यादि में सभी समाजों के संख्यानुपात में सर्वव्यापी आरक्षण की जो लड़ाई शुरू किये हैं, और जिसका असर दिख भी रहा है, उस लड़ाई को छिन्न-भिन्न करना।

आरक्षण और सत्ता में आपकी अपर्याप्त भागीदारी के लिए जिम्मेवार कौन!

शासक वर्ग की मीडिया, न्यायधीशों, लेखकों और पत्रकारों द्वारा जो यह प्रचारित किया जा रहा है कि आरक्षित वर्गों की ही कुछ कथित अग्रसर जातियां, आपका हक मार रही हैं, क्या इसकी तह में आप जाने की जहमत उठाएंगे! आरक्षण कोई वस्तु नहीं जिसे सड़क पर फेंक दिया गया हो और जिसके पास ताकत है वो लूटकर अपना घर भर लेता हो! इस पर विचार करने के पहले आरक्षण की अवधारणा समझ लें कि यह जन्मगत कारणों से शक्ति के स्रोतों से जबरन दूर धकेले गए मानव समूहों को कानून के जरिये उनको शेयर दिलाने का सबल माध्यम है। हिन्दू आरक्षण में हजारों साल से हमारे मूलनिवासी बहुजन समाज को शक्ति के समस्त स्रोतों से बहिष्कृत करके रखा, जो फुले-शाहूजी-पेरियार और सर्वोपरि बाबा साहेब डॉ आंबेडकर के प्रयासों से टूटा। इन महापुरुषों ने किया क्या! हिन्दू आरक्षण द्वारा बंद किया गया प्रतियोगिता मंच हम मानवेतरों के लिए मुक्त करा दिया। तो आरक्षण से हमें यह मिला कि जिन क्षेत्रों में हमें योग्यता की आजमाइस करने का अवसर नहीं था, वह अवसर बाबा साहेब डॉ.आंबेडकर प्रवर्तित आरक्षण ने संख्यानुपात में सुलभ करा दिया।

आरक्षण के लिए जरुरी है शिक्षा और क्या इससे वंचित करने का काम कथित हक़मार जातियों ने किया है!

लेकिन एससी/एसटी और ओबीसी के आरक्षण के जरिये मूलनिवासियों को जो अवसर मिला उसे हस्तगत करने के लिए है उपयुक्तता (efficiency) प्रमाणित करना नितांत आवश्यक है, जिसके लिए जरुरी है शिक्षा : शिक्षा ही आधार है आरक्षण का लाभ उठाने का। आप बताएं जो शिक्षा अवसरों के हस्तगत करने का आधार है, उससे वंचित करने में, क्या आरक्षित वर्गों की अग्रसर जातियों की भी कोई भूमिका रही? नहीं! सभी को पता है हजारों साल से हमारे शिक्षार्जन को अधर्म घोषित कर, इससे वंचित करने का काम उसी वर्ग के लोगों ने किया, जिनकी आज की तारीख में प्रतिनिधित्व कर रही है, भाजपा।

बहरहाल आंबेडकरी आरक्षण प्रदत अवसरों को हस्तगत करने के लिए जो शिक्षा जरुरी है, उसे कमोवेश जिस विषम हालात में आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों के ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, प्रो. विवेक कुमार, एस.आर.दारापुरी, डॉ. उदित राज, डॉ. लाल

जी प्रसाद निमर्ल, डॉ. कौलेश्वर, डॉ. कौशल पंवार इत्यादि ने अर्जित किया है, उससे बहुत ज्यादे बेहतर हालात डॉ. जगदीश प्रसाद, एसके बिस्वास, डॉ. ए.के. बिस्वास, नामदेव ढसाल, बुद्ध शरण हंस, चंद्रभान प्रसाद, डॉ. जय प्रकाश कर्दम, डॉ. विजय कुमार त्रिशरण, बृजपाल भारती, सुदेश तनवर, शीलबोधि, डॉ. पुष्पलता संखवार, प्रो. रतनलाल, अरविन्द कुमार, अनूप श्रमिक, डॉ. रामविलास भारती, नंदू प्रसाद, विरेन्द्र कुमार, योगेन्द लाल भारती, डॉ. राजीव, बीआर विप्लवी, ज्योतिबा अशोक, डॉ. प्रदीप चौधरी, डॉ. यशपाल, उमेश कुमार, विद्यानंद आजाद, विरेन्द्र कुमार, हरिकेश्वर राम जैसे कथित हक़मार वर्गों के भाई-बंधुओं के लिए भी सुलभ नहीं रहे। बहरहाल आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों के लोग शिक्षा में पिछड़ने के कारण ही, लाभ उठाने से वंचित रह गए। क्यों वे शिक्षा नहीं ले पाए, इस पर इन वर्गों के नेता-बुद्धिजीवियों के लिए विचार करना जरुरी हो गया है।

मूलनिवासी अब अपने बच्चों को आईएएस, पीसीएस, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर बनाने का सपना देखना छोड़ दें!

अब जो शिक्षा आरक्षण के अवसरों का लाभ उठाने का सबसे जरुरी माध्यम है, उसके विषय में आप को यह विदित होना चाहिए कि 24 जुलाई, 1991 को लागू नवउदारवादी नीति के जरिये ब्राह्मण नरसिंह राव ने मूलनिवासियों को शिक्षा से बेदखल करने का जो उपक्रम चलाया, उसे वर्तमान मोदी सरकार ने तुंग पर पंहुचा दिया है। आज की तारीख में क्वालिटी एजुकेशन निजी क्षेत्र में शिफ्ट करने के साथ ही, ऐसी व्यवस्था मोदी सरकार ने कर दी है कि मूलनिवासियों के बच्चे उच्च शिक्षा का मुंह ही नहीं देख सकते। गांधी जी कहा करते थे शूद्रों को उतनी ही शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे शूद्रत्व का अपना काम ठीक से कर सकें। आज गांधी के उपदेश का पालन करते हुए शासक वर्ग ने वह काम कर दिखाया है। आने वाले दिनों में मूलनिवासियों के बच्चे उतनी ही शिक्षा ले पाएंगे, जिससे वे तृतीय व चतुर्थ श्रेणी का जॉब प्राप्त कर सकें। शासकों की साजिश के फलस्वरूप मूलनिवासी दलित-आदिवासी- पिछड़े और इनसे धर्मान्तरित अब अपने बच्चों को आईएएस, पीसीएस, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर बनने का सपना देखना छोड़ दें, तो ही उनका भला होगा। क्योंकि शासकों ने ऐसी चाक-चौबंद व्यवस्था कर दिया है कि ऐसे सपनों का पूरा होना प्रायः असंभव होते जायेगा।

सत्ता में भागीदारी!

आरोप यह भी है कि सत्ता की सारी मलाई आरक्षित वर्गों की हक़मार जातियां खा जाती हैं। इस आरोप को मानने के पहले आरक्षित वर्गों के नेता और बुद्धिजीवियों को यह बुनियाद बात ध्यान में रखनी है कि आज की तारीख में वह राजतंत्रीय व्यवस्था इतिहास के पन्नों में विलीन हो चुकी है, जिसमें राजा रानी के पेट से पैदा होते थे : जिसमें कोई भी तलवार के बल पर राज्य दखलकर राजा बन सकता था। आज सर्वत्र ही डेमोक्रेटिक व्यवस्था है, जिसमें राजा (आज की तारीख में सांसद-विधायक) मतपेटियों से पैदा होते हैं और मतपेटियों से वही राजा बन सकता है, जिसके समाज के पास सख्याबल है। यह व्यवस्था ही ऐसी

ही है जिसमें बहुसंख्यकों के शासन में अल्पसंख्यकों की रक्षा की जाती है। इसलिए सारी दुनिया में सत्ता पर उस समाज का कब्जा है, जिसका संख्या-बल प्रभावी है। इस कारण ही जिस देश के वंचितों से भारत के वंचित बहुजनों की तुलना हो सकती है, उस दक्षिण अफ्रीका में जुलु ट्राइब्स की सत्ता में प्रधानता है। जिस तरह भारत के दलित-पिछड़ों में अनेकानेक विभाजन है, उतना तो नहीं, फिर भी कालों में 34 विभाजन हैं। कालों में तुलनामूलक रूप से जो कम काला है, वह अपने से ज्यादा कालों के प्रति उसी तरह हिकारत की भावना रखता है, जैसे भारत के मूर्ख दलित-पिछड़े अपने ही समाज के कथित निम्नतर लोगों के प्रति रखते हैं। कालों का ही देश है दक्षिण अफ्रीका जहां दर्जन से अधिक ट्राइब्स, भारत के संदर्भ में जातियां हैं, जिनमें जुलु संख्याबहुल हैं, और सत्ता उनके हाथ में है।

अगर भारत के आरक्षित वर्गों में सत्ता की भागीदारी में असंतुलन है, तो उसके पीछे एकमेव कारण, उन जातियों का सख्या-बल है और जातियों के निर्माण के लिए जिम्मेवार कौन वर्ग है, यह एक बच्चा भी जानता है। हाल के वर्षों में विदेशीमूल के अल्पजन शासकों की सत्ता के काट के लिए मान्यवर कांशीराम ने, जो जाति चेतना का राजनीतिकरण किया, वह जाति चेतना दो-धारी तलवार साबित हुई है। इस जाति चेतना से प्रभावित समुदाय अपने-अपने समुदायों के लोगों को नेता बनाने के लिए आज पहले से कहीं ज्यादा मुस्तैद हैं, जिसमें संख्या-बल से कमजोर जातियों के लिए अवसर कम हैं। लेकिन आपको सोचना चाहिए कि इसी जाति चेतना के कारण कारण भारत का जन्मजात शासक वर्ग एक लाचार समूह में तब्दील हो चुका है, जिससे हालात बदले हैं : जिसका लाभ अवश्य ही बाकी वंचित जातियों के साथ अति पिछड़ी जातियों को भी मिल रहा है।

जरुरत है सोच बदलने की

यह एक सचाई है कि अंग्रेजों ने 500 सालों के सुदीर्घ त्याग और संघर्ष के फलस्वरूप जो लोकतान्त्रिक व्यवस्था दुनिया को उपहार दी है एवं जिसमें मानवाधिकारों की लड़ाई और आंबेडकरी आरक्षण ने चार चांद लगाया है, उसने दुनिया भर में जन्म के आधार पर वंचित किये गए महिलाओं, अश्वेतों इत्यादि को अपनी योग्यता प्रमाणित करने का अपार अवसर सुलभ करा दिया है। सदियों के ये वंचित आज प्रतियोगिता का मुक्त अवसर प्राप्त कर खुद को प्रमाणित करने की चाह में विस्मय और विस्मय पैदा किये जा रहे हैं। खुद को प्रमाणित करने की चाह में अवसर पाकर अमेरिका व अन्यान्य देशों के काले व्यवसाय, गीत-संगीत, खेल-कूद, फिल्म-मीडिया, राजनीति जीवन के अनेकों क्षेत्रों में श्रेष्ठता का दंभ भरने वाले श्वेत-चर्म को म्लान कर दिए हैं। आज खुद भारत सहित दुनिया भर की महिलाएं कौन सा ऐसा क्षेत्र नहीं हैं, जहाँ अपनी सबल उपस्थिति दर्ज न करा रही हों। ऐसा लगता है सदियों की वंचना ने उनमें खुद को प्रमाणित करने की अतिरिक्त उर्जा का संचार कर दिया है, इसलिए उनकी वंचना आज मानव जाति के लिए वरदान बनती नजर आ रही है।

भारत में आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों की वंचना भी चमत्कार घटित कर सकती है, यदि वे दुनिया के दूसरे वंचितों से प्रेरणा लेते हुए खुद को प्रमाणित करने का दृढ़ संकल्प ले लें तो। शासक वर्गों द्वारा स्व-हित में संविधान को काफी हद तक निष्प्रभावी किये जाने

के बावजूद आज भी अतिपिछड़ी जातियों के लिए औरों की तरह तमाम क्षेत्रों में योग्यता प्रदर्शन अवसर सुलभ है। इसके लिए जरुरत है दुनिया भर की महिलाओं, अश्वेतों से प्रेरणा लेकर खुद में खुद को प्रमाणित करने की उत्कट चाह पैदा करना। इन्हीं प्रतिकूलताओं को जय कर ओमप्रकाश वाल्मिकी, प्रो. विवेक कुमार, डॉ. लालजी प्रसाद निर्मल इत्यादि जैसे ढ़ेरों लोग उभरे। निहायत ही अल्पसंख्यक पिछड़ी जाति के होकर भी राजनीति का बड़ा विजन और बहुजन हित की उत्कट चाह के कारण पिछले दिनों दिवंगत एम.करुणानिधि उस जगह पहुँचे, जहां अग्रसर जातियों की बड़ी संख्या वाले नेता भी न पहुँच सके। बहुजन-मुक्ति की उत्कट चाह और खुद को प्रमाणित करने की जूनून में कर्पूरी ठाकुर वह मुकाम हासिल किये, जिसका सपना बड़ी संख्या-बल वाले नेता तक नहीं देख सकते। ऐसे में यदि आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियां खुद को प्रमाणित करने का संकल्प ले लें तो उनकी वंचना भी वरदान सावित हो सकती है।

अपना वजूद बचाने के लिए बहुजन-वर्ग में संगठित होना : इतिहास की बड़ी मांग

बहरहाल आज के भूमंडीकरण के दौर में खुद को प्रमाणित करने की जरुरत सिर्फ आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों को ही नहीं, बल्कि कथित अगड़ों को भी है। भूमंडलीकारण की नीति है : सिर्फ सर्वोत्तम ही सर्वाइव करेगा। आज बहुजन समाज के पिछड़े और अगड़े : दोनों समूहों के वजूद पर संकट गहरा रहा है। एक तो इस दौर में अवसर सिकुड़ते जा रहे हैं। दूसरा, यह कि जीओ और जीने दो की भावना से शून्य शासक वर्ग बचे-खुचे सारे अवसर उसी तरह परम्परागत सुविधाभोगियों के लिये सुनिश्चित करा देने पर अमादा है जैसा उसने हिन्दू आरक्षण के जरिये किया। अतः जब अवसर ही नहीं रहेगा फिर किसके लिए योग्यता प्रमाणित करने का प्रयास करेंगे! ऐसे में सबसे जरुरी है कि आरक्षित वर्ग की सभी जातियां अपना वजूद बचाने के लिए मिलजुलकर ऐसा संगठित प्रयास करें जिससे कि जिस विशेषाधिकारयुक्त वर्ग का प्रत्येक क्षेत्र में 80-90% कब्जा हो गया है, वह अपने संख्यानुपात पर सिमटे। ऐसा करने पर प्रायः 65 से 75% सरप्लस अवसर आपके हिस्से में आ जायेंगे। जब ऐसा हो जाय फिर जरूरत महसूस हो तब बंटवारे की दिशा में आगे बढ़ें। इसके लिए दो काम करना पड़ेगा। पहला, आपको बहुजन वर्ग में खुद को तब्दील करना पड़ेगा। दूसरा, इसके लिए दक्षिण अफ्रीका को मॉडल बनाना पड़ेगा। किन्तु इस मॉडल को प्रभावी बनाने के लिए आपको स्थापित करनी पड़ेगी बहुजनों की तानाशाही सत्ता, जिसके लिए आपको मार्क्स के वर्ग-संघर्ष को रखना पड़ेगा ध्यान में। मार्क्स ने अपने सर्वहारा वर्ग में शक्तिशाली शोषक वर्ग से पार पाने के लिए पेट्टी-बुर्जुआ अर्थात छोटे-छोटे व्यापारियों तक को शोषित वर्ग में शामिल किया था। अतः वर्तमान में सवर्णों द्वारा चिन्हित हक़मार वर्ग से ध्यान हटाकर आरक्षित वर्गों की अग्रसर जातियों को भी साथ लेकर छेड़ना पड़ेगा आपको असल हक़मार वर्ग के खिलाफ वर्ग संघर्ष। इसके लिए आपका वंचित बहुजन वर्ग में संगठित होना इतिहास की बड़ी जरुरत है। बहुजन वर्ग में संगठित होने बाद इस संघर्ष को स्वाधीनता संग्राम की भांति लड़ना पड़ेगा।

गुलामी से मुक्ति के लिए जरूरी है : बहुजनों की तानाशाही सत्ता!

मंडलवादी आरक्षण से कुपित सवर्णवादी शासकों ने धनार्जन के सारे स्रोत सवर्णों के हाथों में सौंपने की रणनीति के तहत 24 जुलाई, 1991 से लागू नवउदारवादी अर्थनीति को जो हथियार के रूप में इस्तेमाल करना शुरू किया, उसका जो परिणाम आना चाहिए, वह बहुजनों की गुलामी के रूप में सामने आया है। आज की तारीख में भारत के जन्मजात विशेषाधिकारयुक्त और सुविधाभोगी तबकों का जमीन, सप्लाई, डीलरशिप, ठेकों, फिल्म-मीडिया इत्यादि धनोपार्जन के समस्त स्रोतों पर 90 प्रतिशत ज्यादा कब्ज़ा हो ही गया है : राजसत्ता की संस्थाएं भी इससे नहीं बची हैं। संसद-विधानसभाओं में बहुजनों के प्रतिनिधियों की संख्या भले ही ठीक-ठाक हो, पर मंत्रीमंडलों में दबदबा इन्ही का है। मत्रीमंडलों द्वारा लिए गए फैसलों को अमलीजामा पहनाने वाले प्रायः 80-90 प्रतिशत अधिकारी इन्ही वर्गों के है। जहां तक न्यायपालिका का सवाल है एक बच्चे तक को पता है कि इनके दबदबे के कारण न्यायपालिका, सवर्णपालिका में तब्दील हो चुकी है। आज की तारीख में दुनिया के किसी भी देश में परम्परागत विशेषाधिकारयुक्त व सुविधाभोगी वर्ग का ऐसा दबदबा नहीं है। इस दबदबे ने बहुसंख्य लोगों के समक्ष जैसा विकट हालात पैदा कर दिया है, वैसे से ही हालातों में दुनिया के कई देशों में शासक और गुलाम वर्ग पैदा हुए : ऐसी ही परिस्थितियों में दुनिया के तमाम देशों में स्वाधीनता संग्राम संगठित हुए।

काबिले गौर है कि शासक और गुलाम के बीच मूल पार्थक्य शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनीतिक-शैक्षिक-धार्मिक) पर कब्जे में निहित रहता है। गुलाम वे हैं जो शक्ति के स्रोतों से बहिष्कृत रहते हैं, जबकि शासक वे होते हैं जिनका शक्ति के स्रोतों पर एकाधिकार रहता है। तमाम उपनिवेशों के मूलनिवासियों की दुर्दशा के मूल में शक्ति के स्रोतों पर शासकों का एकाधिकार रहा है। अगर शासकों ने पराधीन बनाये गए लोगों को शक्ति के स्रोतों में वाजिब हिस्सेदारी दिया होता, दुनिया में कहीं भी स्वाधीनता संग्राम संगठित नहीं होता। शक्ति के समस्त स्रोतों पर अंग्रेजों के एकाधिकार रहने के कारण ही भारतवासियों को स्वाधीनता संग्राम का आन्दोलन संगठित करना पड़ा ; ऐसे ही हालातों में दक्षिण अफ्रीका के मूलनिवासी कालों को शक्ति के स्रोतों पर 80-90% कब्ज़ा जमाये अल्पजन गोरों के खिलाफ मुक्ति का कठोर संग्राम चलाना पड़ा। अमेरिका का जो स्वाधीनता संग्राम सारी दुनिया के लिए स्वाधीनता संग्रामियों के लिए एक मॉडल बना, उसके भी पीछे लगभग वही हालत रहे। ऐसे में आज यदि भारत पर नजर दौड़ाई जाय तो पता चलेगा कि मंडल उत्तर काल में जो स्थितियां और परिस्थितियां बन या बनाई गयी हैं, उसमें मूलनिवासी बहुजन समाज के समक्ष एक नया स्वाधीनता संग्राम संगठित करने से भिन्न कोई विकल्प ही नहीं बंचा है। वर्तमान हालात में यदि कोई यह सोचता है कि आरक्षण बचाने; निजीक्षेत्र और न्यायपालिका में आरक्षण बढ़ाने की लड़ाई लड़कर कर मूलनिवासियों को बचा लेगा तो वह मूर्खो के स्वर्ग में वास कर रहा है। नहीं! शक्ति के समस्त स्रोतों पर जिस तरह शासक जातियों ने बेहिसाब कब्ज़ा कायम कर बहुजनों को गुलामों की स्थिति में पहुंचा दिया है, ऐसी स्थिति में बहुजनों को वोट के जरिये मुकम्मल आजादी की लड़ाई लड़ कर दक्षिण अफ्रीका के मूलनिवासी कालों की भांति अपनी तानाशाही सत्ता कायम करने से श्रेयष्कर कोई विकल्प ही नहीं है। इसे समझने के लिए दक्षिण

अफ्रीका और भारत के मध्य साम्यताओं को जान लेना जरुरी है।

दक्षिण अफ्रीका और भारत के मूलनिवासियों में साम्यतायें

स्मरण रहे दक्षिण अफ्रीका विश्व का एकमात्र ऐसा देश है, जिसकी भारत से सर्वाधिक साम्यताएं हैं। दक्षिण अफ्रीका में 9-10 प्रतिशत अल्पजन गोरों, प्रायः 79 प्रतिशत मूलनिवासी कालों और 10-11 प्रतिशत कलर्ड (एशियाई उपमहाद्वीप के लोगों) की आबादी है। वहां का समाज तीन विभिन्न नस्लीय समूहों से उसी तरह निर्मित है जैसे विविधतामय भारत समाज अल्पजन सवर्णों, मूलनिवासी बहुजनों और धार्मिक अल्पसंख्यकों से। जिस तरह दक्षिण अफ्रीका में विदेशागत गोरों का शक्ति के स्रोतों पर 80-90 प्रतिशत कब्ज़ा रहा, ठीक उसी तरह भारत में 15 प्रतिशत सवर्णों का 80-90 प्रतिशत कब्ज़ा कायम है। जिस तरह दक्षिण अफ्रीका के मूलनिवासी बहुसंख्य हो कर भी शक्ति के स्रोतों से पूरी तरह बहिष्कृत रहे, प्रायः वैसे ही भारत के मूलनिवासी दलित, आदिवासी, पिछड़े और इनसे धर्मान्तरित तबके भी हैं। जिस तरह दक्षिण अफ्रीका में सभी स्कूल, कॉलेज, होटल, क्लब, पॉश कालोनियां, रास्ते मूलनिवासी कालों के लिए मुक्त नहीं रहे, प्रायः वही स्थिति भारत के मूलनिवासियों की रही। जिस तरह दक्षिण अफ्रीका में सभी सुख-सुविधाएं गोरों के लिए सुलभ रहीं, उससे भिन्न स्थिति भारत के सवर्णों की भी नहीं रही। जिस तरह दक्षिण अफ्रीका का सम्पूर्ण शासन तंत्र गोरों द्वारा गोरों के हित में क्रियाशील रहा, ठीक उसी तरह भारत में शासन तंत्र हजारों साल से सवर्णों द्वारा सवर्णों के हित में क्रियाशील रहा है और आज भी है।

शासक वर्गों की शासितों के प्रति अनात्मीयता

इन दोनों देशों में मूलनिवासियों की दुर्दशा के मूल में बस एक ही कारण प्रमुख रूप से क्रियाशील रहा और वह है शासक वर्गों की शासितों के प्रति अनात्मीयता। इसके पीछे शासकों की उपनिवेशवादी सोच की क्रियाशीलता रही। दक्षिण अफ्रीका के गोरों ने जहां दो सौ साल पहले उपनिवेश कायम किया, वहीं भारत के आर्यों ने साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व। दक्षिण अफ्रीका ने शासकों ने जहां बन्दूक की नाल पर पुष्ट कानून के जरिये मूलनिवासियों को जानवरों जैसी स्थिति में पड़े रहने के लिए विवश किया, वहीं भारत के मूलनिवासियों को मानवेतर प्राणी में तब्दील व अधिकारविहीन करने के लिए प्रयुक्त हुआ था धर्माधारित कानून, जिसमें मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य घोषित करते हुए ऐसे-ऐसे प्रावधान तय किये गए, जिससे मूलनिवासी चिरकाल के लिए शक्ति के स्रोतों से बहिष्कृत होने के साथ ही निःशुल्क-दास में परिणत होने के लिए अभिशप्त हुए। किन्तु अब भारत और दक्षिण अफ्रीका में शोषण के हिसाब से पहले वाली साम्यताएं नहीं रही। 1994 में रंगभेदी शासन से मुक्ति पाने के बाद वहां परवर्तीकाल में मूलनिवासी कालों की तानाशाही सत्ता कायम हुई। इसके जोर से उन्होंने अपने संविधान में ऐसे-ऐसे प्रावधान किया जिससे नस्लीय भेदभाव तो अतीत का विषय बना ही, इससे भी बढ़कर धनार्जन के समस्त स्रोतों सहित तमाम क्षेत्रों में ही विविध नस्लीय समूहों की संख्यानुपात में भागीदारी सुनिश्चित हुई। इससे जिन गोरों का तमाम क्षेत्रों में 80-90 प्रतिशत कब्ज़ा रहा, वे अपने संख्यानुपात 9-10 प्रतिशत पर सिमटने लगे तथा

उनका वर्चस्व टूटने लगा। वर्चस्व उनका कायम था तो भूमि पर। किन्तु अब मूलनिवासियों की तानाशाही सत्ता के जोर से फरवरी 2018 में उनके हिस्से की कुल 72 प्रतिशत जमीन भी छीन कर मूलनिवासियों में बांटने का प्रावधान कर दिया गया है।

दक्षिण अफ्रीका का अनुभव बताता है कि भारत के मूलनिवासी भी बैलेट बॉक्स में क्रांति घटित करके अपनी तानाशाही सत्ता कायम कर वंचितों को धनार्जन के समस्त स्रोतों सहित तमाम क्षेत्रों में हिस्सेदारी दिलाने और शोषकों को नियंत्रित करने का काम अंजाम दे सकते हैं। दक्षिण अफ्रीका की भांति भारत में जन्मजात वंचितों की तानाशाही सत्ता कायम होने पर यहां भी गोरों की तरह समस्त क्षेत्रों में हक़मारों को उनके संख्यानुपात पर सीमित किया जा सकता है। अगर 15 प्रतिशत हक़मारों को उनकी संख्यानुपात पर रोक दिया जाय तो उनके कब्जे के 15 प्रतिशत अवसरों को घटा कर प्रत्येक क्षेत्र में औसतन 65-75 प्रतिशत अतिरक्त (surlus) अवसर सृजित कर बहुजनों के मध्य वितरित करने का प्रावधान किया जा सकता है। पर, सवाल पैदा होता है, जिस तरह वर्तमान में हक़मारों की तानाशाही सत्ता कायम है, उसे ध्वस्त कर क्या दक्षिण अफ्रीका की भांति वंचितों की तानाशाही सत्ता कायम की जा सकती है? स्थिति कठिन है, बावजूद इसके वर्तमान में भारत में जो हालात हैं, बहुजनों की तानाशाही सत्ता मुमकिन है।

बहुजनों की सापेक्षिक वंचना का सद्व्यवहार कर कायम हो सकती है : दक्षिण अफ्रीका जैसी तानाशाही सत्ता!

वैसे भारत के मौजूदा राजनीतिक परिदृश्य को देखते हुए भारत में दक्षिण अफ्रीका जैसी बहुजनों की तानाशाही सत्ता की कल्पना करने का दुःसाहस विरले ही कोई कर पायेगा। पर, यदि हम इस बात को ध्यान में रखें कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में सत्ता हासिल करने में संख्याबल सर्वाधिक महत्वपूर्ण फैक्टर का काम करता है और इसी संख्या-बल को अपने अनुकूल करने के लिए पार्टियों को धन-बल, मीडिया-बल, प्रवक्ताओं-कार्यकर्ताओं की भीड़ और कुशल नेतृत्व की जरुरत पड़ती तो पता चलेगा भारत के बहुजनवादी दलों जैसी अनुकूल स्थिति पूरी दुनिया में अन्यत्र दुर्लभ है। और ऐसा इसलिए कि आज की तारीख में सामाजिक अन्याय का शिकार बनाई गयी भारत के बहुजन समाज जैसी विपुल आबादी दुनिया के इतिहास में कहीं भी, कभी भी नहीं रही। और यह आबादी इस समय अन्याय की गुफा से निकलने के लिए बुरी तरह छटपटा रही है।

वैसे तो सामाजिक अन्याय की कोई निर्दिष्ट परिभाषा नहीं है, किन्तु विभिन्न समाज विज्ञानियों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि नस्ल, जाति, लिंग, धर्म, भाषा, क्षेत्रादि के आधार पर विभाजित विभिन्न सामाजिक समूहों में से कुछेक का शक्ति के स्रोतों से जबरन बहिष्कार ही सामाजिक अन्याय कहलाता है। इस लिहाज से दुनिया भर में स्त्री के रूप में विद्यमान आधी आबादी सर्वत्र ही सामाजिक अन्याय का शिकार रही। सर्वाधिक अन्याय के शिकार तबकों में अमेरिका तथा दक्षिण अफ्रीका के कालों तथा भारत के बहुजनों का कोई जवाब नहीं। इनमें भारत के बहुजनों को ही शीर्ष पर रखा जा सकता है। कारण सामाजिक अन्याय का शिकार बने किसी भी समुदाय को भारत के बहुजनों की भांति आर्थिक और

राजनीतिक शक्ति के साथ धार्मिक और शैक्षिक क्षेत्र से पूरी तरह बहिष्कृत नहीं रखा गया। यही नहीं यहां बहुजनों को अच्छा नाम तक रखने से वंचित किया गया। किन्तु सदियों पूर्व शासकों की बर्बर सोच के तहत अन्याय का शिकार बनाई गयी कौमें इससे काफी हद निजात पा चुकी हैं, अपवाद हैं तो सिर्फ भारत की मूलनिवासी जातियां।

भारत में सामाजिक अन्याय की शिकार विश्व की विशालतम आबादी को आज भी जिस तरह विषमता का शिकार होकर जीना पड़ रहा है, उससे यहां विशिष्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन (Specific social movement) पनपने की 'निश्चित दशाएं' (Certain conditions) साफ़ दृष्टिगोचर होने लगीं हैं। समाज विज्ञानियों के मुताबिक़ क्रांतिकारी आन्दोलन मुख्यतः सामाजिक असंतोष (Social unrest), अन्याय, उत्पादन के साधनों का असमान बंटवारा तथा उच्च व निम्न वर्ग के व्याप्त खाई के फलस्वरूप होता है। सरल शब्दों में ऐसे आन्दोलन आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी की कोख से जन्म लेते हैं और तमाम अध्ययन साबित करते हैं कि भारत जैसी भीषणतम गैर-बराबरी पूरे विश्व में कहीं है ही नहीं। इस क्रान्तिकारी आन्दोलन में बहुसंख्य लोगों में पनपता 'सापेक्षिक वंचना' (Relative deprivation) का भाव आग में घी का काम करता है, जो वर्तमान भारत में दिख रहा है। क्रांति का अध्ययन करने वाले तमाम समाज विज्ञानियों के मुताबिक़ जब समाज में सापेक्षिक वंचना का भाव पनपने लगता है, तब आन्दोलन की चिंगारी फूट पड़ती है। समाज विज्ञानियों के मुताबिक़, 'दूसरे लोगों और समूहों के संदर्भ में जब कोई समूह या व्यक्ति किसी वस्तु से वंचित हो जाता है तो वह सापेक्षिक वंचना है दूसरे शब्दों में जब दूसरे वंचित नहीं हैं तब हम क्यों रहें!' सापेक्षिक वंचना का यही अहसास बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अमेरिकी कालों में पनपा,जिसके फलस्वरूप वहां 1960 के दशक में दंगों का सैलाब पैदा हुआ,जो परवर्तीकाल में वहां डाइवर्सिटी लागू होने का सबब बना। दक्षिण अफ्रीका में सापेक्षिक वंचना का अहसास ही वहां के मूलनिवासियों की क्रोधाग्नि में घी का काम किया, जिसमें भस्म हो गयी वहां गोरों की तानाशाही सत्ता।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हजारों साल के विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न सवर्णों के शक्ति के तमाम स्रोतों पर ही 80-90 प्रतिशत कब्जे ने बहुजनों में सापेक्षिक वंचना के अहसास ने धीरे-धीरे विस्फोटक बिन्दु के करीब पहुंचा दिया, जो 2015 में क्रेडिट सुइसे और जनवरी 2018 में आई ऑक्सफाम की रिपोर्ट के बाद अब चरम बिन्दु पर पहुंच गया है। और इतिहास गवाह है कि जब बहुसंख्य लोगों में यह भाव चरम पर पहुंच जाता है तो क्रांतिकारी आन्दोलन भड़कने में देर नहीं लगती। भारत में जिस मात्रा में सापेक्षिक वंचना की व्याप्ति है, वह बैलेट बॉक्स में क्रांति घटित करने का सबब बन सकती है। भारत में सापेक्षिक वंचना का भाव क्रान्तिकारी आन्दोलन की एक और शर्त पूरी करता दिख रहा है और वह है 'हम-भावना' (we-ness) का तीव्र विकास। कॉमन वंचना ने बहुजनों को उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार जमाये वर्गों के विरुद्ध 'हम-भावना' से लैस करना शुरू कर दिया है। इस भयावह विषमता का सद्‌व्यवहार कर बहुजन साहित्यकार वोट के जरिये क्रांति घटित करने लायक हालात बनाने में जुट गए हैं। आरक्षण के वर्गीकरण के पीछे 'हम-भावना' भी एक बड़ा फैक्टर है।

एक ही कमी : योग्य बहुजन नेतृत्व!

बहरहाल आज भारत में वर्ग-संघर्ष के उभार की प्रायः सारी स्थितियां और परिस्थितियां तैयार हैं। लेकिन ऐसे आंदोलनों के लिए जरुरत होती है एक योग्य नेतृत्व की, जो क्रांति के लिए पूंजीभूत हुईं आदर्श स्थितियों का सद्व्यवहार कर सके। बहुजनों का दुर्भाग्य है कि इन आदर्श स्थितियों के सद्व्यवहार करने लायक इस समय कोई उपयुक्त नेतृत्व नहीं है। नेतृत्व की इन्हीं कमियों का लाभ उठाकर चैम्पियन सवर्णवादी भाजपा ने बैलेट बॉक्स के जरिये एक प्रतिक्रान्ति कर दी है। लेकिन बहुजन नेतृत्व यदि खुद को इन अनुकूल स्थितियों के सद्व्यवहार के लिए तैयार कर ले, जो खूब असंभव भी नहीं है, तो बैलेट बॉक्स के जरिये भारत में बहुजनों की तानाशाही सत्ता कायम हो सकती है। लेकिन वैसा होता दिख नहीं रहा है। कारण, बहुजन नेता सवर्णवादी सत्ता के विनाश के लिए गठबंधन का तो मन बनाते दिख रहे हैं, पर, बैलेट बॉक्स के जरिये क्रान्ति घटित करने लायक आदर्श स्थितियों के सद्व्यवहार की दिशा में आगे बढ़ने का ऐसा कोई ऐसा संकेत नहीं दे रहे हैं, जिससे बहुजन अपनी तानाशाही सत्ता का सपना देख सके।

सापेक्षिक वंचना के सद्व्यवहार लिए आरक्षित वर्गों के बुद्धिजीवी और संगठनों को सामने आना होगा

यह सही है कि सापेक्षिक वंचना के चलते बहुजनों की तानाशाही सत्ता लायक अभूतपूर्व अनुकूल स्थितियां पैदा हुई हैं, जिसके सद्व्यवहार लायक योग्य नेतृत्व का भारी अभाव है। ऐसे में इसके सद्व्यवहार के लिए इतिहास ने आरक्षित वर्गों के बुद्धिजीवियों और संगठनों पर बड़ा बोझ डाल दिया है। अतः सापेक्षिक वंचना को एक्सट्रीम पर पहुचाने के लिए आरक्षित वर्गों की अगड़ी-पिछड़ी असंख्य जातियों के छात्र, गुरुजन, बुद्धिजीवियों और संगठनों का सामने आना वक्त की एक बड़ी जरुरत बन गयी है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने जोर गले से कहा है, 'गुलामों को गुलामी का अहसास करा दो, वे गुलामी की बेडियां तोड़ डालेंगे।' विगत दो-तीन वर्षों में आई विभिन्न रिपोर्टों से यह तय हो गया है कि भारत के दलित, आदिवासी, पिछड़े और इनसे धर्मातरित तबके, विशेषकर दलित विशुद्ध गुलाम में परिणत होने जा रहे हैं। ऐसे में इन रिपोर्टों में आये आंकड़ों के सहारे हम बहुजनों को गुलामी और उनकी सापेक्षिक वंचना से अवगत कराने में सर्वशक्ति लगायें तो बात बन सकती है।

वर्ग-संघर्ष में मनचाहे परिणाम के लिए : पेश करना होगा शोषितों की मुक्ति का निर्भूल एजेंडा!

लेकिन वर्ग-संघर्ष में बात पूरी तरह से तब बनेगी जब उनके सामने एक ऐसा एजेंडा प्रस्तुत किया जाय, जिसे देखकर वंचित बहुजनों में गुलामी से मुक्ति की चाह पैदा हो सके। स्मरण रहे मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष में सर्वहाराओं को आहवान करते हुए कहा था, 'तुम्हें खोने के लिए सिर्फ गुलामी की बेड़ियां हैं, जबकि पाने को सारा जहां।' इसी तरह भारत में वर्ग-संघर्ष में उतरने के पहले आरक्षित वर्गों की शोषित-वंचित जातियों के समक्ष पेश करना होगा : मुक्ति का एक निर्भूल एजेंडा जिसे हासिल करने के लिए वे परस्पर घृणा और शत्रुता का परित्याग

कर संगठित बहुजन के रूप में सामने आयें। और इसके लिए बहुजनों के समक्ष अमेरिकी और दक्षिण अफ्रीकी मॉडल की सर्व-व्यापी आरक्षण अर्थात डाइवर्सिटी से प्रेरित 'बहुजन डाइवर्सिटी मिशन' का भारत के प्रमुख समाजों—सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों के स्त्री-पुरुषों के मध्य संख्यानुपात में बँटवारे का यह दस सूत्रीय एजेंडा—1-सेना व न्यायालयों सहित सरकारी और निजी क्षेत्र की सभी प्रकार नौकरियों; 2- सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा दी जाने वाली सभी वस्तुओं की डीलरशिप; 3- सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा की जाने वाली खरीदारी; 4—सड़क-भवन निर्माण इत्यादि के ठेकों, पार्किंग, परिवहन; 5—सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा चलाये जाने वाले छोटे-बड़े स्कूलों, विश्वविद्यालयों, तकनीकी-व्यवसायिक शिक्षण संस्थानों के संचालन, प्रवेश व अध्यापन; 6—सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा अपनी नीतियों, उत्पादित वस्तुओं इत्यादि के विज्ञापन के मद में खर्च की जाने वाली धनराशि; 7—देश-विदेश की संस्थाओं द्वारा गैर-सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) को दी जाने वाली धनराशि; 8—प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं फिल्म के सभी प्रभागों; 9—रेल-राष्ट्रीय राजमार्गों की खाली पड़ी भूमि सहित तमाम सरकारी और मठों की जमीन व्यवसायिक इस्तेमाल के लिए एससी-एसटी के मध्य वितरित हो तथा पौरोहित्य एवं 10—ग्राम पंचायत, शहरी निकाय, सांसद-विधानसभा, राज्यसभा की सीटों एवं केंद्र की कैबिनेट विभिन्न मंत्रालयों के कार्यालयों, राष्ट्रपति-राज्यपाल, प्रधानमंत्री-मुख्यमंत्री के कार्यालयों इत्यादि के कार्यबल में—परोसने से श्रेयष्कर कुछ हो ही नहीं सकता।

और अंत में!

विशेष रूप से आभार प्रकट करता हूं उन तमाम लेखक बंधुओं का जिनके लेखों और साक्षात्कार के बिना इस पुस्तक को लाना कठिन होता। आभार प्रकट करता हूं **डॉ. संजय पासवान, बुद्ध शरण हंस, डॉ. विजय कुमार त्रिशरण, दिलीप मंडल, सुरेश केदारे, डॉ. जगदीश प्रसाद, बृजपाल भारती, प्रो. वीरभारत तलवार, डॉ. एसएन और पीएल संखवार, डॉ. प्रदीप चौधरी, शीलबोधी, सुदेश तनवर, डॉ. लाल जी प्रसाद निर्मल, डॉ. राजबहादुर मौर्य, विद्यानंद आजाद, राजीव रंजन, निर्मल पासवान, डॉ. पीएल आदर्श, डॉ. राजीव कुमार, निर्मल पासवान, योगेन्द्र लाल भारती, अजय पासवान, डॉ. रामबिलास भारती, अनूप श्रमिक, निर्देश सिंह, ज्योतिबा अशोक, डॉ. कौलेश्वर प्रियदर्शी, डॉ. कविश कुमार** जैसे समाज परिवर्तनकामी हस्तियों का जिनके सहयोग और उत्साहवर्द्धन से ही डाइवर्सिटी का वैचारिक आन्दोलन जारी है। शेष में आभार प्रकट करता हूं अपनी जीवन संगिनी मेवाती दुसाध और बेटे प्रशांत के प्रति जिन्होंने मुझ जैसे निकम्मे व्यक्ति को घर-गृहस्थी की जिम्मेवारियों से मुक्त कर बाबा साहेब के मिशन में कुछ योगदान करने का भरपूर अवसर सुलभ कराया।

दिनांक : 4 नवम्बर, 2018
(तेरहवां डाइवर्सिटी डे)

आपके आंदोलन का हमसफर
एच.एल. दुसाध
अध्यक्ष, बहुजन डाइवर्सिटी मिशन, दिल्ली

जय भीम-जय भारत

हक़मार कौन!

विमर्श की पृष्ठभूमि

हक़मार कौन!

–एच.एल. दुसाध

गत 23 अगस्त, 2018 को सुप्रीम कोर्ट ने जिस तरह दलितों के आरक्षित तबकों के संपन्न लोगों के बच्चों को प्रमोशन में आरक्षण पर दिए जाने पर सवाल उठाया है, उससे भारत में एक नए वर्ग, 'हक़मार वर्ग' को लेकर एक नया विमर्श शुरू हो गया है। हालाँकि ऐसा नहीं कि इससे पहले ऐसा नहीं होता रहा : होता रहा पर, एससी/एसटी के आरक्षित वर्ग की तुलनामूलक रूप से थोड़ी सी अग्रसर तीन-चार जातियों को हक़मार वर्ग के रूप में चिन्हित करने का जैसा प्रयास सुप्रीम कोर्ट द्वारा सवाल उठाये जाने के अगले दिन से शुरू हुआ, वह अभूतपूर्व है। और इसके पीछे परोक्ष भूमिका वर्तमान सत्ताधारी पार्टी की है, जिसका प्रश्रय पाकर ही अब मीडिया और न्यायिक सेवा इत्यादि से जुड़े लोग हक़मार जातियों को आरक्षण के दायरे से बाहर करने में सक्रिय हो गए हैं। बहरहाल जिन कथित अग्रसर जातियों पर आरक्षण छोड़ने का नैतिक दबाव बनाया जा रहा है क्या वे इतनी संपन्न बन चुकी हैं कि उन पर आरक्षण छोड़ने का दबाव बनाया जाय? इनको रिजर्वेशन से दूर धकेलने की मुहिम क्या युक्तिसंगत है? बहरहाल युक्तिसंगत न होने के बावजूद अगर पिछड़ों की भाँति दलितों की कुछ कथित संपन्न जातियों को हक़मार बताते हुए आरक्षण से दूर धकेलने की मुहिम चल रही तो उसके पीछे एकाधिक कारण हैं।

दलितों की अग्रसर जातियों को क्रीमी लेयर और अन्यान्य तरीकों से आरक्षण के दायरे से बाहर रखने के पीछे का खास मकसद अनग्रसर जातियों को अवसर प्रदान करना नहीं, बल्कि प्रकारांतर में 'योग्य कैंडिडेट उपलब्ध नहीं हैं' के जरिये वह सीटें उन 15% अनारक्षित वर्ग के लोगों को शिफ्ट कराना है, जिनका अघोषित रूप से 50% से ज्यादा आरक्षण है। लेकिन आज दलितों के आरक्षित वर्ग की संपन्न जातियों को निशाने पर लेने के पीछे जो कारण प्रमुख रूप से क्रियाशील है, वह है बहुजन एकता से निजात पाना।

वैदिक काल से ही हिन्दू आरक्षण का लाभ उठाने वाली जातियों के समक्ष आतंक का अन्यतम विषय रहा है, वर्ण-व्यवस्था की वंचित जातियों की एकता, जिसमें 7 अगस्त, 1990 को मंडल की रिपोर्ट आने के बाद लम्बवत विकास हो गया। मंडल की रिपोर्ट प्रकाशित होने के साथ ही वर्ण-व्यवस्था के अर्थशास्त्र के तहत सदियों से शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनीतिक-शैक्षिक-धार्मिक) से बहिष्कृत दलित-आदिवासी-पिछड़े और इनसे धर्मान्तरित

समूह परस्पर घृणा और शत्रुता की प्राचीर तोड़कर एक दूसरे के निकट आने लगे। वंचितों की एकता और उनकी जाति चेतना का राजनीतिकरण हजारों साल की विशेषाधिकारयुक्त और सुविधाभोगी जातियों को राजनीतिक रूप से लाचार समूह में तब्दील कर दिया। इस कारण ही बहुजन एकता इनके लिए आतंक का विषय बन गयी। इस आतंक से निजात पाने के लिए ही शासक दलों की ओर से तरह-तरह की तरकीबें की गयीं, जिनमें प्रधान थी 24 जुलाई, 1991 को गृहित 'नवउदारवादी अर्थनीति'। इस अर्थनीति में दलित-आदिवासी-पिछड़े और इनसे धर्मान्तरित तबकों को मंडल पूर्व स्थिति पंहुचाने का भरपूर सामान देखते हुए ही देश के दोनों प्रमुख दलों के प्रधानमंत्रियों ने अपना वैचारिक मतभेद भुलाकर निजीकरण, उदारीकरण, विनिवेशीकरण, भूमंडलीकारण की अर्थनीति को आगे बढ़ाने में एक दूसरे से होड़ लगाया, जिनमें सबसे आगे निकल गए वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी।

आज मोदी की नीतियों के कारण देश की टॉप की 10% आबादी का शासन-प्रशासन के साथ देश की धन-दौलत पर 90 प्रतिशत से ज्यादा कब्जा हो गया है। यही नहीं जो शिक्षा आरक्षण के अवसरों का लाभ उठाने का मुख्य जरिया है, मोदी राज में उस शिक्षा से आरक्षित वर्गों को पूरी तरह दूर धकेलने की तैयारी मुक्कमल हो चुकी है। अतः विगत चार वर्षों में मंडल से हिन्दू आरक्षणवादियों की हुई क्षति की भरपाई का जो बलिष्ठ प्रयास मोदी राज में हुआ, उससे बहुजन, विशेषकर दलित समुदाय शर्तिया तौर पर विशुद्ध गुलाम में परिणत होने जा रहा है। इस स्थिति को देखते को हुए आरक्षित वर्गों के बुद्धिजीवी, एक्टिविस्ट मोदी सरकार को 2019 में सत्ता से आउट करने और धनार्जन के समस्त स्रोतों में 'जिसकी जितनी संख्या भारी - उसकी उतनी हिस्सेदारी' लागू करवाने की निर्णायक लड़ाई के लिए नए सिरे से संगठित होना शुरू कर दिए।

किन्तु बहुत पहले से ही 2019 की तैयारियों में जुटी मोदी सरकार ने आरक्षित वर्गों बुद्धिजीवियों की तैयारियों का इल्म हो चुका था। लिहाजा आरक्षित वर्गों की एकता को छिन्न-भिन्न करने के लिए वह अगस्त 2017 में पिछड़ों के आरक्षण को तीन भागों में विभाजित करने की दिशा में अग्रसर हुई। तब बहुत से पत्रकारों ने सवाल किया था क्या सरकार दलितों के आरक्षण में भी ओबीसी की तरह विभाजन करेगी। उस समय सरकार की ओर से साफ इंकार कर दिया गया था। किन्तु 2018 में मोदी की अतिसवर्ण-परस्त नीतियों के कारण 2019 में सम्भावना और धूमिल हो गयी, लिहाजा सरकर को ओबीसी की भांति दलित आरक्षण में भी कुछ करना जरुरी हो गया। उसी का परिणाम है हक़मार वर्ग का नया सामाजिक-राजनीतिक विमर्श, जिसके जरिये दलितों के उन सक्षम जातियों को आरक्षित वर्ग के दायरे से अलग-थलग करने का उपक्रम शुरू हो चुका है, जो सामान्यतया शोषकों के खिलाफ चलाये जाने वाले आंदोलनों में पहली कतार में दिखती हैं। तो कहा जा सकता है भारत के असल हक़मार मार्ग, जिनका वर्तमान सरकार की नीतियों के सौजन्य से शासन-प्रशासन सहित देश की धन दौलत पर 90 प्रतिशत से ज्यादा कब्जा हो चुका है, की स्थिति सुरक्षित करने के मकसद से ही आरक्षित वर्गों की सबसे जुझारू जातियों को हक़मार बताकर अलग-थलग करने की बड़ी साजिश शुरू हो गयी है।

दलितों में विभाजन से जो असर हो सकता है, भाजपा नेता नीतीश कुमार के साथ मिलकर उसका सफल प्रयोग बिहार में कर चुके हैं, जहां महा-दलितों को नाममात्र की सुविधाएँ दिला

कर मंडल उत्तरकाल में दलितों में विकसित हुई चट्टानी एकता में गहरी दरार पैदा की जा चुकी है। और जिस तरह बहुजन नेतृत्व निष्क्रिय है, मुमकिन है सरकार का प्रश्रय पाकर न्यायिक और मीडिया जगत तथा संघ परिवार से जुड़े लोग आरक्षित वर्गों की कथित संपन्न जातियों को 'हक़मार वर्ग' के रूप में स्थापित करने में सफल हो जाएं। ऐसे में आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों के बुद्धिजीवीयों पर एक अतिरिक्त जिम्मेवारी आन पड़ी है।

इसमें कोई शक नहीं कि आरक्षण के अवसरों का असमान बंटवारा एक समस्या है, लेकिन इससे कई-कई गुना बड़ी समस्या है संपदा-संसाधनों का असमान बंटवारा। आज हजारों साल से शक्ति के समस्त स्रोतों पर एकाधिकार रखने वाले भारत के जन्मजात सुविधाभोगी वर्ग का पुनः मोदी राज में हर जगह 80-90 प्रतिशत कब्जा हो गया है। आधुनिक विश्व में कोई ऐसा देश नहीं है जहां परम्परागत सुविधाभोगी वर्ग का इस तरह कब्जा हो। यह यूं ही नहीं हुआ है : इसे सुपरिकल्पित रूप में अंजाम दिया गया है। आजाद भारत के शासकों ने जो महा-लोकतंत्र व मानवता-विरोधी काम अंजाम दिया, वह यह कि उन्होंने जन्मजात वंचितों-दलित, आदिवासी, पिछड़े और इनसे धर्मान्तरित- को सरकारी नौकरियों को छोड़कर धनार्जन के बाकी स्रोतों- भूमि, सप्लाई, डीलरशिप, ठेकों, पार्किंग, परिवहन, फिल्म-मीडिया-में बिलकुल ही हिस्सेदारी नहीं दिया। और सरकारी नौकरियों में दिया भी तो मंडल उत्तरकाल में उसे खत्म करने में सारी ताकत झोंक दी। इस मामले में मोदी सरकार का कोई जवाब नहीं।

मोदी सरकार आरक्षित वर्गों के प्रति इतनी निर्मम रही है कि एक ओर जहाँ यह निजीकरण, विनिवेशीकरण इत्यादि के जरिये सरकारी नौकरियों के खात्मे में पूरी तरह मुस्तैद रही, वहीं दूसरी ओर बची-खुची सरकारी नौकरियों की वैकेन्सी निकालने में तरह-तरह का षड्यंत्र करती रही। खुद मोदी सरकार ने मार्च 2016 में माना कि 2013 से 2015 के बीच केंद्र सरकार की नौकरियों में करीब 89 प्रतिशत गिरावट आई है। तब राज्य मंत्री जितेन्द्र कुमार ने संसद में बताया था कि 2013 में 1, 51, 841 सीधी नौकरिया दी गयीं थी, जो 2014 में घटकर 1, 26, 261 रह गयीं और 2015 में केवल 15, 877 लोगों की सीधी भर्ती की गयी। इसका मतलब यह हुआ कि 2013 से 2015 के बीच आरक्षित वर्ग की नौकरियों में 90 प्रतिशत की गिरावट आई। एससी/एसटी और पिछड़े वर्गों के लिए निर्धारित आरक्षण के जरिये 2013 में 92, 928 लोगों को नौकरी मिली थी। 2014 में यह तादाद 72, 077 थी जो 2015 में महज 8, 436 तक सिमट कर रह गयी। अब भाजपा के केन्द्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने 5 अगस्त, 2018 को स्पष्ट घोषणा कर दिया है कि सरकारी नौकरियां नहीं हैं और जब नौकरियां ही नहीं हैं तो आरक्षण का भी कोई अर्थ नहीं है!। तो यह है उस मोदी सरकार की कारगुजारी जो आरक्षण को पूरी तरह कागजों की शोभा बनाने के साथ सरकारी नौकरियों को कपूर की भाँति उड़ा चुकी हैं। कागजों की शोभा बन चुके उसी आरक्षण में आरक्षित वर्गों की अनग्रसर जातियों को वाजिब हिस्सेदारी दिलाने के लिए मोदी आज आरक्षण में विभाजन कर सामाजिक न्याय के नए मसीहा बनने की तैयारियों में जुट गए हैं। और अगर उनकी सामाजिक न्याय की मुहिम सफल हो जाती है तो उसका हस्र एक रोटी के लिए कलहरत उन दो बिल्लियों जैसा हो जायेगा, जिनके मध्य रोटी का वाजिब बंटवारा करते-करते जज बना बन्दर पूरी रोटी ही खा गया और बिल्लियाँ देखती रह गयीं।

ऐसे में अब ओबीसी और एससी/एसटी के आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों के समक्ष दो ही ठोस विकल्प रह गए हैं। पहला, वे सामाजिक न्याय के नए मसीहा मोदी के साथ मिलकर अपने हक़मार भाइयों को अलग-थलग करने की मुहिम में जुट जाएँ, ताकि कागजों की शोभा बन चुके आरक्षण में अपना वाजिब हिस्सा पा सकें। दूसरा, अपने हक़मार भाइयों के साथ मिलकर धनार्जन के समस्त स्रोतों में- जिसकी जितनी सख्या भारी, उसकी उतनी भागीदारी- की नीति लागू करवाने की लड़ाई लड़ें और यह लड़ाई जीतने के बाद फिर आपस में मिलकर नए सिरे से आरक्षण बंटवारा कर लें! और यदि क्रांतिकारी बदलाव की इच्छाशक्ति हो तो संगठित होकर भारत को आज का दक्षिण अफ्रीका बनाने प्रयास करें। स्मरण रहे दक्षिण अफ्रीका में भारत के बहुजनों सादृश्य मूलनिवासी कालों की तानाशाही सत्ता कायम होने के बाद वहां शक्ति के समस्त स्रोतों पर 80-90 प्रतिशत कब्जा रखने वाले गोरे आज हर क्षेत्र में 9-10 प्रतिशत पर सिमटने के लिए मजबूर हो चुके हैं। भारत को आज का दक्षिण अफ्रीका बनाने का परिणाम क्या हो सकता है, आरक्षित वर्गों की अन्ग्रसर जातियों के लिए इसकी कल्पना करना कोई कठिन काम नहीं है।

साक्षात्कार की प्रश्नावली

1. अनग्रसर दलित-पिछड़ों का शोषक वर्ग कौन? आरक्षित वर्गों की कथित अग्रसर जातियां या वर्ण-व्यवस्था का जन्मजात सुविधाभोगी वर्ग?

2. आरक्षित वर्गों की तीन-चार कथित अग्रसर जातियों पर नैतिक दबाव बनाया जा रहा है कि वे आरक्षण छोड़ दें। क्या आरक्षण का लाभ उठाने वाली जातियां इतनी ताकतवर बन चुकी हैं कि उन पर आरक्षण छोड़ने का दबाव बनाया जाय? इन वर्गों के अधिकारी तक अपने पद का दुरूपयोग कर उतना नहीं कमा पाते, जितना उसी विभाग में तैनात एक जन्मजात सुविधाभोगी वर्ग का चपरासी तक कमा लेता है। इन वर्गों के अधिकारी कर्मचारियों पर तक निज परिवार के साथ अपने भाई-बंधुओं पर भी कुछ करने का दबाव होता है। दबाव इन पर बहुजन आंदोलनों में बड़े पैमाने पर आर्थिक योगदान का भी होता है। इतना कुछ करने के बाद वह कितना बचा लेता होगा, जिसे अगड़ा मानकर उसके बच्चों को आरक्षण न लेने लिए दबाव बनाया रहा है। इसके लिए दबाव बनाने वाले लोग राम विलास पासवान, मायावती इत्यादि जैसे दस-बीस लोगों का नाम गिनाते हैं। लेकिन याद रहे हर जेनरल सिद्धांत के कुछ अपवाद होते हैं : राम विलास पासवान और मायावती इत्यादि अपवाद में ही आते हैं। ऐसे लोगों का दृष्टांत देकर आरक्षित वर्गों के थोड़े से अग्रसर लोगों को रिजर्वेशन से दूर धकेलने की मुहिम क्या युक्तिसंगत है?

3. आरक्षित वर्गों में विभाजन करने से बहुजनों में परस्पर के प्रति घृणा और विद्वेष का कितने व्यापक पैमाने पर प्रसार हो सकता है, इसका सबसे कुत्सित रूप बिहार में देखा गया।

जहाँ चरम सामाजिक न्याय विरोधी भाजपा और नीतीश कुमार के युग्म प्रयास से दलितों में विभाजन कर दिया गया। इसके फलस्वरूप कथित अति-दलितों के उच्च शिक्षा में कार्यरत गुरुजन और छात्रों के साथ आंबेडकरी आन्दोलन को आगे बढ़ाने वाले बड़े-बड़े अधिकारी तक दलितों (दुसाधों) के खिलाफ शत्रु की भूमिका में आ गए। मैं बिहार में अपने सजाति दुसाधों से कई गुना प्यार पे बैक टू द सोसाइटी से दीक्षित गैर-दुसाधों से पाता रहा। आज जब बिहार जाता हूं, गैर-दुसाध अधिकारी-प्रोफेसर-एक्टिविस्ट नहीं के बराबर मुझमें रूचि लेते हैं। बहरहाल यहाँ प्रश्न है कि एक ऐसे दौर में जबकि भाजपा के केन्द्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने 5 अगस्त, 2018 को यह स्पष्ट घोषणा कर दिया है, 'सरकारी नौकरियां नहीं हैं और जब नौकरियां ही नहीं हैं तो आरक्षण का भी कोई अर्थ नहीं है!' के बाद आरक्षित वर्गों में विभाजन के लिए युद्ध स्तर पर सक्रिय होने की कोई युक्ति है?

4. आज आजाद भारत की सवर्णवादी सरकारों, विशेषकर मोदी सरकार की अर्थनीतियों के कारण देश की टॉप की 10% आबादी का 90% धन-दौलत पर कब्जा हो गया है, तथा बहुजन, विशेषकर दलित समुदाय शर्तिया तौर पर विशुद्ध गुलाम में परिणत होने जा रहा है। यह स्थिति इसलिए पैदा हुई है क्योंकि सवर्णवादी सरकारों ने धनार्जन के स्रोतों का विभिन्न सामाजिक समूहों के मध्य वाजिब बंटवारा नहीं कराया। आज इतिहास की सबसे बड़ी मांग है कि आरक्षित वर्ग संगठित होकर धनार्जन के समस्त स्रोतों में 'जिसकी जितनी संख्या भारी - उसकी उतनी हिस्सेदारी की लड़ाई की निर्णायक लड़ाई शुरू करे। क्या आरक्षित वर्गों की कथित अग्रसर जातियों को आरक्षण के दायरे से अलग-थलग करके धनार्जन के स्रोतों में हिस्सेदारी की लड़ाई प्रभावी तरीके से लड़ी जा सकती है?

5. आज सत्ताधारी दल, न्यायपालिका, मीडिया का प्रश्रय पाकर आरक्षित वर्गों में संघर्ष की जो जमीन तैयार की जा रही है, क्या उसके फलस्वरूप 'आरक्षण रूपी रोटी' का तो वह हस्र नहीं हो जायेगा जो एक रोटी के लिए कलहरत दो बिल्लियों के मध्य बन्दर के हस्तक्षेप करने से हुआ था?

6. क्या यह बेहतर नहीं होगा की आरक्षित वर्ग की सभी जातियां संगठित होकर सर्वव्यापी आरक्षण अर्थात डाइवर्सिटी की लड़ाई में सर्वशक्ति लगायें और इस लड़ाई को जीतने के बाद शक्ति के समस्त स्रोतों-आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक और धार्मिक- का दलित-अति दलित, पिछड़ा- अतिपिछड़ा के मध्य विभाजन की ओर आगे बढ़ें?

7. क्या बेहतर नहीं होगा कि आरक्षित वर्गों की जातियां कागजों की शोभा बन चुके आरक्षण के लिए विभाजन में उर्जा न लगा कर भारत को दक्षिण अफ्रीका बनाने में सर्वशक्ति लगायें?

स्मरण रहे दक्षिण अफ्रीका के मूलनिवासी काले अपनी तानाशाही सत्ता कायम कर आज अपने देश में भारत के जन्मजात सुविधाभोगी वर्ग के सादृश्य गोरों को हर क्षेत्र में उनकी संख्यानुपात पर सिमटने के लिए बाध्य कर दिये हैं। इससे जिन क्षेत्रों में गोरों का कब्जा 80-90% था, वे गोरे आज प्रत्येक क्षेत्र में 9-19% 90% पर सिमटने के लिए बाध्य हुए हैं। ऐसा होने के फलस्वरूप उनके हिस्से का अतिरिक्त 70-80% अवसर मूलनिवासियों के मध्य बंटने की शुरुआत हो चुकी है।

8. क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि बहुजनों के आरक्षण के खात्मे में अघोषित रूप से अत्यंत सक्रिय अदालतें दूसरे कई जरुरी मुद्दों के स्वतः संज्ञान लेने में कोई रूचि नहीं लेतीं। मसलन सुप्रीम कोर्ट से कुछ ही दूरी पर मनुवादियों द्वारा संविधान की प्रतियाँ जलाई गयीं, किन्तु कोर्ट ने कोई संज्ञान नहीं लिया। संज्ञान बाबा साहेब डॉ.आंबेडकर की 25 नवम्बर, 1949 वाली चेतावनी का भी कभी नहीं लिया, जिसमें उन्होंने कहा था—'हमें निकटतम समय के मध्य आर्थिक और सामाजिक विषमता का खात्मा कर लेना होगा, नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के उस ढांचे को विस्फोटित कर सकती है, जिसे संविधान निर्मात्री सभा ने इतनी मेहनत से बनाया है।' आज टॉप की 10% आबादी का देश की धन-दौलत पर 90% से ज्यादा कब्जा होने से विषमता ऐसी जगह पहुँच चुकी है, जिसका दृष्टान्त मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है। लेकिन भीषणतम रूप में फैली विषमता कोर्ट के लिए कोई चिंता का विषय ही नहीं बन पा रही है! आखिर क्यों?

9. आमतौर पर लोग समझते हैं कि अस्पृश्य, आदिवासी या पिछड़ी जाति में जन्म लेने से ही लोगों को आरक्षण मिल जाता है। इसमें योग्यता (efficiency) गौड़, जाति ही प्रधान है। लेकिन वास्तविकता पूरी तरह भिन्न है। आंबेडकरी आरक्षण योग्यताधारित (caste cum merit) है। विशुद्ध जाति आधारित रहा है वर्ण-व्यवस्थाधारित हिन्दू आरक्षण जिसमें महज ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य के रूप में जन्म लेने के कारण सवर्ण सदियों से शक्ति के समस्त स्रोतों (आर्थिक-राजनीतिक-धार्मिक-शैक्षिक) के भोग के एकाधिकारी रहे। आज भी जाति विशेष में जन्म-लाभ करने के कारण सवर्णों के लिए बाबा जी, बाबू साहेब, सेठ जी के रूप में अपार सामाजिक सम्मान आरक्षित है। बाबा साहेब के मुताबिक धर्म भी शक्ति का एक स्रोत है, जिसकी अहमियत आर्थिक शक्ति से जरा भी कम नहीं है। भारत में आर्थिक शक्ति के समतुल्य 'धार्मिक शक्ति' पर ब्राह्मणों का एकाधिकार है।

डॉ. आंबेडकर ने हिन्दू आरक्षण की जगह जो आधुनिक आरक्षण सुलभ कराया, उसमें अपने वर्ग के मध्य उपयुक्तता (efficiency) प्रमाणित करना नितांत आवश्यक है, जिसके लिए सबसे जरुरी रही शिक्षा। आंबेडकरी आरक्षण में जाति महज प्रतियोगिता के मुक्त प्रांगण में प्रवेश का माध्यम रही : किन्तु प्रतियोगिता में उतीर्ण होने लिए जरुरी रही शिक्षा। इसका मतलब यह हुआ कि बढ़िया से लिख-पढ़कर कर ही कोई आरक्षण का लाभ उठा सकता है। शिक्षा के जोर से ही परवर्तीकाल में आरक्षित वर्गों के असंख्य लोग आईएएस, पीसीएस, डॉक्टर, इंजीनियर इत्यादि बने। शिक्षा की अपार शक्ति को देखते हुए भारी मुसीबतें और ढेरों प्रतिकूलतायें झेलते हुए अस्पृश्यों ने अपने बच्चों को एजुकेट करने पर जोर दिया। भारी मुसीबतें झेलकर अर्जित की गयी शिक्षा के गर्भ से ही दलित समाज में उदय हुआ एसके बिस्वास, डॉ. यूएन बिस्वास, डॉ. ए.के विश्वास, नामदेव ढसाल, बुद्ध शरण हंस, डॉ जय प्रकाश कर्दम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, चंद्रभान प्रसाद, डॉ. विजय कुमार त्रिशरण, प्रो.विवेक कुमार, डॉ. उदित राज, डॉ. लालजी प्रसाद निर्मल, डॉ. जगदीश प्रसाद, प्रो. एसएन कुरील, प्रो डॉ. एसएन और डॉ. पुष्पलता संखवार, प्रो. रतनलाल, डॉ कौलेश्वर प्रियदर्शी, कौशल पंवार इत्यादि जैसी असंख्य शख्सियतों का। इन सब के साथ कॉमन बात यही है कि इन सभी ने ही ज्ञानार्जन के लिए भारी प्रतिकूलताओं का सामना किया और सफल बने।

इन सम्मानित शख्सियतों की भाँति ही कुछ जाति विशेष के लोगों ने अपने बच्चों को शिक्षित करने पर अतिरिक्त जोर दिया। शिक्षा पर अतिरिक्त जोर दिए जाने के कारण ही कुछेक जातियां आरक्षण का लाभ उठाने में आगे निकल गयीं। शिक्षा को उन्नति का मूलमंत्र समझने वाली आरक्षित वर्गों की कुछ जातियां ही आज हिन्दू आरक्षणवादियों और आरक्षित वर्गों की पिछड़ी जातियों के नेताओं द्वारा 'हक़ार वर्ग' के रूप में चिन्हित की जा रही हैं। ऐसी हक़मार जातियों को आरक्षण के दायरे से दूर धकेलने के हो रहे प्रयास के फलस्वरूप आज बहुजन एकता संकटग्रस्त हो चुकी है। ऐसे में क्या यह नहीं कहा जा सकता कि बाबा साहेब के शिक्षित बनो जैसे पुरजोर आह्वान के वावजूद आरक्षित वर्गों की कुछ जातियों ने शिक्षा की अनदेखी कर दिया, जिस कारण ही आज आरक्षित वर्गों में विभाजन की अप्रिय स्थिति पैदा हुई है? क्या हक़मार वर्ग के खिलाफ शत्रु की भूमिका में अवतरित होने जा रहे लोग अपनी जातियों को नए सिरे एजुकेट करने का भी अभियान शुरू करेंगे?

10. ओबीसी की जातियों को तीन भाग में विभाजित करने एवं एससी/एसटी में अगड़ा-पिछड़ा के विभाजन की जमीन पुख्ता करने वाले प्रधानमंत्री मोदी अपने विशालतम प्रचार माध्यमों के जरिये 2019 के पूर्व खुद की छवि सामाजिक न्याय के नए मसीहा के रूप स्थापित करवाने की तैयारियों में जुट चुके हैं। आप बताएं गजब के भाषणबाज मोदी के इस अभियान का वंचित बहुजन कैसे मुकाबला करे?

निवेदक

एच.एल. दुसाध

संपादक : डाइवर्सिटी इयर बुक : 2018-19

hl.dusadh@gmail.com

प्रश्नोत्तर

बुद्ध शरण हंस
–पटना, बिहार

(1)

दलित और पिछड़ा सापेक्ष शब्द है। दलित पिछड़ा कहते ही यह प्रश्न अपने आप पैदा हो जाता है कि किसी ने दलित वर्ग के लोगों को दलित बनाया और पिछड़ा वर्ग के लोगों को पिछड़ा बनाया। तब कोई भी पूछ सकता है कि किसने दलित वर्ग के लोगों को दलित और पिछड़ा वर्ग के लोगों को पिछड़ा बनाया ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए ज्यादा रिसर्च करने की जरूरत नहीं है। हिन्दू धर्म के अनेक शास्त्र खुलेआम यह फतवा जाहिर किये हुए है कि किसको दलित बनाना है और किन-किन तरीकों से उन्हें दलित बनाना है। उसी तरह से हिन्दू धर्म के अनेक

शास्त्र अनेक जाति समूहों को पिछड़ा बनाने के लिए अनेक तरह का फतवा जाहिर किये हुए हैं।

हिन्दू शास्त्रों का निर्माता अतीत के ब्राह्मण रहे। इस कारण दलित वर्ग के सारे लोगों को दलित बनाने का सारा कुकर्म अतीत के पतित ब्राह्मणों ने किया है। उसी तरह से पिछड़ा वर्ग के सारे लोगों को पिछड़ा बनाने का कुकर्म भी अतीत के ब्राह्मणों ने ही किया है। शोषक वही होता है जो किसी का शोषण करने के लिए सोचता है और खुद अपनी सोच के अनुसार कमजोर वर्ग के लोगों का शोषण करता है। ब्राह्मणों ने दलितों और पिछड़ों का शोषण करने के लिए मन से पूरा षडयन्त्र करके सोंचा,लिखकर सोंचा और सदियों शोषण करके उन कमजोर वर्ग के लोगों का शोषण करने के लिए स्थायी विधान भी लिख छोड़ा। ब्राह्मणों ने शोषण करने के लिए अनेक स्मृतियां नाम की किताबें लिख छोड़ी हैं। आज तो जिन खूनी लोगों ने कमजोर वर्ग के शोषण करने के लिए वैसी खूनी किताबें लिख छोड़ी है उन सबको दौड़ा-दौड़ा कर मारने की जरूरत है। मगर आज तो उन खूनी किताबें को लिखनेवाले हैं नहीं। वे सभी तो मरकर सड़ गये। तब आज अब वे सभी पीटे जायेंगे जो शोषण करनवाली खूनी किताबों की रक्षा करेंगे या महिमा मण्डित करेंगे। वे ब्राह्मण भी हो सकते हैं और गैर-ब्राह्मण भी हो सकते हैं।

आज भारत के बहुजन वर्ग दलित और पिछड़ा वर्ग के लोग तीन तरह के संकटों से परेशान हैं। पहला ब्राह्मणों पुरोहितों द्वारा लादा गया धार्मिक संकट। दूसरा सामंतों द्वारा किया जा रहा अत्याचार और अनाचार का संकट। तीसरा पूंजीपतियों द्वारा लादा जा रहा बाजार और शैक्षणिक संस्थाओं में महंगाई का संकट। ये तीनों शोषक समुदाय भारतीय समाज की अग्रसर जातियां हैं। ये सभी वर्ण व्यवस्था के ही बाई प्रोडक्ट हैं। वर्ण व्यवस्था ने ही एक वर्ग को ब्राह्मण बनाकर धार्मिक डकैती करने की छूट दे दी है। वर्ण व्यवस्था ने ही सवर्ण के नाम पर कमजोर वर्ग के लोगों को जाति श्रेष्ठता के नाम पर अत्याचार और अनाचार करने की छूट दे दी है। इन्हीं दो वर्ग के लोगों से भारत के सारे बाजार और शैक्षणिक संस्थाएं अलोकतांत्रिक और शोषणपूर्ण हैं।

जाति व्यवस्था में पिसता हुआ बहुजन अनारक्षित वर्ग के सामंती विचार के लोगों से पीड़ित हैं, जिसके मूल में जाति व्यवस्था है। जाति व्यवस्था ब्राह्मणों सवर्णों को इंसान बने रहने की शिक्षा ही नहीं देती। वर्ण व्यवस्था की शिक्षा ने उन्हें हैवान बने रहने का बड़प्पन सिखाया है। जब शिक्षा ही कलुषित है, तब उससे उत्पन्न ब्राह्मण सवर्ण इन्सानियत का रोल करने में सर्वथा असफल हो रहे हैं। इसी कारण बाबा साहब आंबेडकर ने शास्त्रों को डायनामाइट से उड़ा देने की लिखित सलाह भारतीयों को दे रखी है। मगर शास्त्रों के विरूद्ध बगावत तो अब ब्राह्मणों और सवर्णों को ही करना है। कारण, वर्ण व्यवस्था के कारण जितना दुख अपमान गैर-ब्राह्मणों को भोगना था वे भोग चुके। अब वर्ण व्यवस्था के कारण विनाश की नोटिस ब्राह्मणों को मिल रही है। वे चेतकर अगर अपने हाथों अपने दुष्ट पुरूखों के खूनी शास्त्रों को खुले आम चौक चौराहे पर आग के हवाले करेंगे और आम आवाम से करायेंगे, तब तो ठीक नहीं तो खूनी शास्त्रों की जहर बात के कारण आज या कल खूनी शास्त्रों को महिमा मण्डित करनेवाले चौक चौराहे पर खदेड़े जायेंगे। क्या पता वे मारे भी जाएं?

साफ तौर पर दलित वर्ग के शोषक ब्राह्मण सवर्ण वर्ग और शास्त्र सभी हैं। सभी शोषक

समाज और तत्व दलितों का शोषण करने में समानान्तर चल रहे हैं। कहीं शास्त्र का हवाला देकर अनारक्षित वर्ग के लोग दलितों का शोषण कर रहे हैं, कहीं दलितों का थोड़ा भी उपकार करना चाहनेवालों को शास्त्र की दुहाई देकर उसके समाज के लोग उपकार करनेवाले का राह रोक दे रहे हैं। अनारक्षित वर्ग के लोगों के मन में दलितों का भला करने के लिए रत्ती भर भी तमीज नहीं आई है। बिना मार के उनकी ऐंठ न गयी है न जायगी। यह मार चाहे सरकार करे, न्यायालय करे या पीड़ित वर्ग के लोग खुद अपनी पीड़ा का हिसाब सूद मूल के साथ वसूल लें।

(2)

बहुत बेशर्मी की बात है अगर कोई यह कहता है कि आरक्षित वर्ग में जिन जातियों के लोग आरक्षण का लाभ लेकर सुखी और सम्पन्न हो गए हैं वे स्वतः आगे आरक्षण लेना छोड़ दें। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी बेहूदी बात कहने और करनेवाले लोग बहुत महान हैं या ईमानदार की औलाद हैं। ऐसी सलाह देनेवालों से मैं कुछ सहज प्रश्न करना चाहता हूं। 1-अनारक्षित वर्ग के ब्राह्मण सवर्ण लोगों जिनके पास हजार एकड़ से भी ज्यादा जमीनें पहले भी थी और आज भी है,क्या ऐसे लोगों ने आगे कुछ भी जमीनें खरीदना छोड़ दिया है ? 2-ब्राह्मण सवर्ण जिनको पहले से कई नगरों में एक नहीं कई बिल्डिगें थीं या अभी भी हैं, क्या उन्होंने आगे कोई नयी बिल्डिन्ग बनाना छोड़ दिया है ? 3- जिन ब्राह्मण सवर्णों के पास एक नहीं, कई व्यापार या उद्‌योग हैं क्या दूसरों के लिए उन्होंने आगे अपना कोई व्यापार या उद्‌योग बढ़ाना बन्द कर दिया है ? 4- जिन ब्राह्मण सवर्ण के बच्चे डाक्टर या ईंजीनियर बन चुके हैं क्या उन्होंने आगे अब अपने बच्चों को डाक्टर और ईंजिनियर बनाना छोड़ दिया है? 5- जिन ब्राह्मण सवर्ण के परिवार में एक दो आइएएस या आइपीएस बन चुके हैं उन्होंने क्या अब अपने किसी बच्चे को आइएएस, आइपीएस बनाना छोड़ दिया है? 6- जिन ब्राह्मण सवर्णों के पास लाखों-करोड़ों का बेंक बैंलेंस है, क्या उन्होंने अपने बेटों के विवाह में दहेज लेना और सरकारी काम में रिश्वत लेना छोड़ दिया है? 7-ब्राह्मण सवर्ण जो हर तरह से सुखी सम्पन्न हैं उनके पास काफी जमीने हैं, कई व्यापार और रोजगार हैं, क्या राजनीति में रहकर या संस्थागत होकर सरकारी सम्पत्ति का घपला-घोटाला करना उन्होंने छोड़ दिया है? 8- ब्राह्मण सवर्ण जिनको हिन्दू शास्त्रों ने खूनी मिजाज का अतीत में बनाया क्या आज वे समाज को सदाचार के आधार पर उन शास्त्रों को खारिज करने की स्थिति में हैं? 9- ब्राह्मण सवर्ण सभी इस बात से अवगत हो चुके हैं कि वर्ण व्यवस्था, जातिभेद, छुआछूत से भारत अतीत में गुलाम बना है और आज भी इन्हीं दुर्गुणों से विकलांग बना हुआ है। क्या इस कमजोरी को जानकर भी देशभर के ब्राह्मण सवर्णों ने जातिभेद, छुआछूत मानना छोड़ दिया है? 10- ब्राह्मण सवर्ण के शिक्षित अशिक्षित सभी को इस तथ्य की जानकारी हो चुकी है कि देशभर में पर्व-त्योहारों के नाम पर रोज बढ़ती भीड़ और कुकुरमुत्ते की तरह उगते मन्दिर देश के विकास के लिए बाधक और भारत की जनता के लिए विनाशक तत्व हैं। क्या ब्राह्मण सवर्ण इस सच्चाई को जानकर पर्व त्योहार और मन्दिरों को अनावश्यक मानना छोड़ दिये हैं?

उपरोक्त सभी प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है। तब किस बदसूरत मुख से ब्राह्मण सवर्ण

यानी अनारक्षित लोग बेशर्मी से यह कहने लगे हैं कि आरक्षित वर्ग के जो लोग आरक्षण का लाभ लेकर शिक्षा पा लिए हैं,सरकारी गैर सरकारी सेवा पा लिए हैं, राजनीति में आकर विधायक और सांसद बन गये हैं, उन्हें अब आगे आरक्षण का लाभ लेना छोड़ देना चाहिए।

सच्चाई यह है कि ब्राह्मण सवर्ण समाज में भी गरीब लोग हैं, इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती। अब पहली जरूरत है कि ब्राह्मण सवर्णों के पूर्ण सम्पन्न लोग सरकारी सेवा में जाना छोडें, राजनीति में विधायक और सांसद बनना छोडें और अपने व्यवसाय के लिए सरकारी ऋण और अनुदान लेना छोड़ें। वे पहले अपने ब्राह्मण सवर्ण के गरीब परिवार के लिए अपना त्याग करें,दूसरे को उपदेश बाद में दें। अगर ब्राह्मण सवर्ण के सम्पन्न लोग अपने ब्राह्मण सवर्ण समाज के गरीब लोगों के लिए त्याग नहीं करेंगे तब इसके लिए अब अनारक्षित वर्ग के लोग ब्राह्मण सवर्ण के गरीब लोगों के साथ सम्पन्न ब्राह्मण गरीब लोगों के लिए सड़क पर उतरेंगे, आंदोलन करेंगे। उनका जीना हराम कर देंगे।

आरक्षित वर्ग के जो लोग शिक्षा लेकर, सरकारी सेवा लेकर या राजनीति में जाकर थोड़ा बहुत सम्पन्न हुए हैं, वे सबके सब अपने समाज के गरीब परिवार के विकास के लिए चिन्तित हैं। अगर सरकार में दम है तब सरकार में बैठे ब्राह्मण सवर्ण पदाधिकारी और विधायक सांसद सब मिलकर अनुसूचित जाति/जनजाति के हिस्से का बैकलाग पद अभियान चलाकर अनुसूचित जाति/जनजाति के उन परिवार के होनहार बच्चों को दे दें जो देय है। क्या ब्राह्मण सवर्णों के पदाधिकारियों और नेताओं को ऐसा करने की हिम्मत है? ब्राह्मण सवर्ण गरीब समाज की झोपड़ी में आग लगाना बन्द करें वरना अगर गरीब की झोपड़ी जब जलेगी तब उस जलती हुई झोपड़ी में बाचाल ब्राह्मण सवर्ण को भी जलाया जायगा। आज नहीं तब कल तो जरूर।

(3)

देश-भर के सबके सब ब्राह्मण सवर्ण बहुत बेहूदगी से कहा करते हैं कि अंग्रजों ने भारतीयों को बांटकर राज किया। इसमें रत्तीभर भी सच्चाई नहीं है। अरे हिन्दू समाज की तो बुनियाद ही बांट करके राज करने की है। ये वर्ण व्यवस्था क्या है ? क्या यह बांटकर राज करने की व्यवस्था नहीं है? ये ऊंच नीच की भावना क्या है ? क्या ये बांटकर राज करने की व्यवस्था नहीं है? ये जातिभेद क्या है? क्या ये भारत की सारी जनता को आपस में बांट करके राज करने की व्यवस्था नहीं है?

ब्राह्मणों और सवर्णों ने आपस में मिलकर शेष बहुजन को धर्म के नाम-पर, राजनीति के नामपर कई खेमों में बांट दिया है। आज सारे के सारे मन्दिरों पर ब्राह्मणों का कब्जा है। मन्दिर से ब्राह्मणों को खरबों रूपयों की आमदनी हो रही है। धन किसका लूटा जा रहा है ? केवल बहुजनों का। अब शेष सवर्णों का ध्यान भी मन्दिर बिजिनेस की ओर गया है। अब अपनी भारी पूंजी लगाकर सवर्ण मन्दिर बनवा रहे हैं। उस मन्दिर का सारा कारोबार सवर्ण करने लगे हैं। ब्राह्मणों को मजदूरी दी जा रही है।

इसका असर आज की राजनीतिक प्रचार में आसानी से देखा और समझा जा सकता है। क्यों भाजपा का मोदी और कांग्रेस का राहुल गांधी गत गुजरात चुनाव में केवल गुजरात के मन्दिरों में जाकर चुनाव प्रचार का ढोंग करने लगे? आज आनेवाले लोकसभा चुनाव के लिए

क्यों राहुल गांधी मानसरोवर की यात्रा कर रहा है? क्यों भाजपा का नरेन्द्र मोदी मध्य प्रदेश के मन्दिरों में जाकर ब्राह्मण पुरोहितों के चरणों में गिर रहा है? चुनाव के लिए मन्दिर-मन्दिर जाना चुनावी दांव पेंच नहीं है, बल्कि भारत के लोगों को अपनी सारी समस्याओं के समाधान के लिए ईश्वर के आगे हवाले कर देने का नाटक करना है। ईश्वर कहां है? मन्दिरों में। मन्दिर का सर्वेसर्वा कौन है? ब्राह्मण। कांग्रेस और भाजपा का यह अन्दरूनी षडयन्त्र है कि भारत देश की जनता को धर्म के जाल में फंसाकर दोनों दल अन्दर से मिलकर उपर से एक दूसरे के विरूद्ध थूकम फजीहत करके भारतीयों पर राज करें।

भारत देश के बहुजन अतीत में भी ब्राह्मणों द्वारा हिन्दू धर्म के आधार पर बांटे गये और आज भी बांटे जा रहे हैं। बांटेंगे ब्राह्मण और बंटेंगे बहुजन। जो बंटेगे वे हारेंगे। जो बांटेगा वह जीतेगा। चालीस साल तक बहुजनों को बांटकर कांग्रेस ने बहुजनों पर राज किया। अब पन्द्रह साल से भाजपा बहुजनों को बांटकर राज कर रही है। बहुजन राजनीति के इस गूढ़ राज को समझे नहीं, इस कारण भाजपा और कांग्रेस दोनों मन्दिर-मन्दिर का षडयन्त्र गेम खेल रही हैं। भाजपा और कांग्रेस के इस षडयन्त्र को बहुजन समाज के लोग खूब अच्छी तरह से समझ रहे हैं । मगर हिन्दू रहकर जातियों में बंटे बहुजन की सारी समझदारी ढ़ाक के तीन पात जैसी हो रही है।

बिहार का दुष्ट मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने अनुसूचित जाति को दलित-महादलित के नाम से दो खेमों में बांट दिया है। यह बंटवारा अनुसूचित जाति की एकता में बहुत ही खतरनाक परिणाम दे रहा है। इसके बावजूद अनुसूचित जाति के राजनैतिक से लेकर बुद्धिजीवी लोग जदयू और भाजपा को बढ़ाने में लगे हुए हैं। इससे बढ़कर अफसोस की बात और क्या हो सकती है? अनुसूचित जाति के लोग चोर डकैत को अपने धर का पहरेदार बनाये हुए हैं। यही अफसोस की बात है। आनेवाला लोकसभा चुनाव में अनुसूचित जाति के लोग बिहार में राजद के गठबन्धन को और उत्तर प्रदेश में बसपा और सपा के गठबन्धन को बहुमत देकर भाजपा और जदयू का नामोनिशान मिटा दें, तब बहादुरी है। वरना अगर लोकसभा चुनाव में भाजपा पिछला चुनाव की तरह बहुमत में आ गयी, तब बहुजनों के विरूद्ध कितना नंगा नाच ये बेशर्म भाजपायी करेंगे कहना कठिन है।

अनुसूचित जाति के लोग अब समझ चुके हैं कि पिछले चुनाव में विनाशकारी भाजपा को बहुमत देकर भारी गलती की गयी है। बहुजनों को बांटने और लूटनेवाले भाजपायी और जदयू को अब हर स्तर पर शिकस्त देने की जरूरत है। बहुजन समझ जायें। खासकर अनुसूचित जाति के सारे लोग समझ जायें। नेता जायें चूल्हा भांड में। नेता हरामी विचार के हो गये हैं। बहुजन जनता को अब नेता के पीछे नहीं, नीति के पीछे चलने की जरूरत है। नीति से काम लेना आज की जरूरत है। बहुजन समाज के अधिकतर नेता भांड की तरह हो गये हैं। बहुजनों को अपने समाज के गलत नेताओं से दूर रहना है और जो नेता जाति के आधार पर नहीं, नीति के आधार पर समाज को लेकर चले उसी के पीछे चलने की जरूरत है।

(4)

बहुजनों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आक्रामक लड़ाई लड़ने की जरूरत है। यह भारत

देश बहुजनों का है। आज भी, अतीत में भी। बहुजनों को आज की तारीख में इस दहशत में नहीं रहना है कि ब्राह्मणों सवर्णों ने अर्थोपार्जन और सत्ता के सारे स्रोतों पर निरंकुश कब्जा कर लिया है। ऐसा तो हो चुका है। अब किस बात की तैयारी करनी है।

बहुजनों का अपने स्तर से आय के स्रोतों पर आक्रामक होकर कब्जा करना शुरू कर देना है। प्रत्येक आय के स्रोत पर कब्जा ब्राह्मणों और सवर्णों ने नियम से नहीं नंगई से किया है। अब इसका जवाब भी नियम से नहीं, नंगई से देने की जरूरत है। अगर बहुजन प्लानिंग करके मजदूर और उपभोक्ता दो वर्ग के लोगों पर धीरे-धीरे अपनी पकड़ बना लें तब ब्राह्मण सवर्ण के खूनी मनसूबों पर बहुजन आसानी से पानी फेर सकते हैं। मजदूर बहुजन समाज के हैं। इस पर पकड़ यों बनानी चाहिए। मजदूर ब्राह्मण सवर्ण के खेत में फार्म में, फैक्टरी में मनमानी मजदूरी पर काम करने की जिद्द करें। इन मजदूरों के पीछे बहुजन समाज का जेहादी जत्था लगा रहे। भक्ति तब भक्ति और शक्ति तब शक्ति, इस सिद्धान्त पर मजदूरों को ब्राह्मणों सवर्णों के द्वारा मनमानी मजदूरी से लाखपति बनाने की जरूरत है। तुम अपना फार्म और फैक्टरी अच्छे ढंग से चलाओ मगर मजदूरों को मनमानी मजदूरी देना ही होगा, चाहे राजी से चाहे बेराजी से। लेनिन ने रूस में फार्म और फैक्टरियों में मजदूरों की हिस्सेदारी का मामला उठाकर जो बबाल खडा किया उसी-का परिणाम बोलशेविक क्रान्ति के रूप में तब्दील हो गया।

ब्राह्मणों सवर्णां के फार्म और फैक्टरी में मजदूरों को मनमानी मजदूरी देने के लिए रोज लाठी चार्ज हो। मजदूरों के कारण मालिकों का जीना हराम करने का पूरा तरीका अपनाना चाहिए। जो बेशर्म हैं उनके साथ बेशर्मी से पेश आने पर उनका होश ठिकाने आ जायगा। बेरोजगार लोग हक के खातिर मारने-भगाने के लिए तैयार हैं। केवल उनको मार्गदर्शन चाहिए।

व्यवसाय का लाभ-शुभ मटियामेट कर देना चाहिए

भारत के कोने कोने के व्यापारी अपनी दूकान में लाभ-शुभ और ऋद्धि-सिद्धि ब्राह्मणों से लिखवाकर बहुत ही मस्ती से ग्राहकों को लूटते हैं। इस लाभ-शुभ को जेहादी जत्था बनाकर लाठी के जोर पर मिटाने का समय आ गया है। व्यापारियों से पूछना चाहिए कि व्यापार में लाभ भी तुम्हारा और शुभ भी तुम्हारा। व्यापारियों की दूकान में, फार्म में, फैक्टरी में जो उपभेक्ता और मजदूर जाते हैं उनका लाभ-शुभ कहां है? उनकी ऋद्धि-सिद्धि कहां है? निश्चय ही व्यापारी का लाभ का मतलब है ग्राहकों की हानि,ग्राहकों की लूट। जिस व्यापारी को जिस व्यापार में जितना ही लाभ हुआ उस व्यापारी ने ग्राहकों को उतना ही लूटा। लाभ माने लूट यह अर्थ अब ग्राहकों यानी आम जनता को समझा देना है। व्यपारी रोज-रोज ग्राहकों को लूटता है, तब ग्राहकों को भी कभी व्यापारी को लूटकर अपना हिसाब चुकता कर लेना चाहिए।

व्यवसायी का लाभ-शुभ तभी चले जब बहुजनों का भी व्यवसाय में लाभ-शुभ चले। एक तरफा लाभ-शुभ में बहुजनों ने बहुत ही धन गंवाया है। बहुजनों को संस्थागत भी होना चाहिए। बहुजन अपने बच्चों को बहुजनों की शैक्षणिक संस्थाएं में ही पढ़ायें। मार्केटिन्ग में भी बहुजनों को चुनने और देखने की नीति अपनानी चाहिए। बहुजन बहुजन की दुकान से ही अपनी जरूरत की सामग्रियां खरीदें। यदि ऐसा किया जायगा तब बहुजनों का व्यवसाय सफल होगा। व्यवसाय हो या कोई संस्था हो या उत्पादन का कोई फर्म हो, अर्थोपार्जन के हर क्षेत्र में बहुजन अपना कौशल दिखलायें।

अकेला नहीं तब सामूहिक प्रयास से कारोबार करें। वैसे तो कोई भी व्यवसाय अकेला करना निरापद है। सामूहिक प्रयास में कई छिद्र आ जाने से व्यवसाय मार खा जाता है। वही हाल संस्था का है। संस्था भी शुरू हो तो अपने विश्वासी लोगों के साथ ही। व्यवसाय में या संस्था चलाने में विश्वास से नहीं व्यवहार और पक्का लिखापढ़ी के साथ कारोबार करने से भविष्य सुरक्षित रहता है। जैसे भी हो बहुजनों को अर्थोपार्जन के हर स्रोतों पर कब्जा करने की जरूरत है।

(5)

शुरूआत दौर में बाबा साहब आंबेडकर के प्रयास से आरक्षण का थोड़ा-सा लाभ अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों को मिला। जैसे ही आरक्षण का लाभ ब्राह्मणों सवर्णों को दिखने लगा, उनकी भवें अनुसूचित जाति-जनजाति के विकास के विरूद्ध तन गयी। उन्हें लगने लगा कि इस आरक्षण के कारण अनुसूचित जाति/जनजाति के लोग लाभान्वित तो हो ही रहे हैं, इस आरक्षण से ब्राह्मण सवर्ण अपमानित भी हो रहे हैं। आरक्षण के विरूद्ध सबसे बड़ा फैक्टर यही है। शोषक अपने शोषण के अधिकार को कतई छोड़ना नहीं चाहते।

भारत देश की आजादी के दस वर्षों की अवधि तक आरक्षण देने की फाइलों पर ब्राह्मण सवर्ण पदाधिकारी बेईमानी पूर्वक लिखा करते थे-scheduled cast candidates are not available. जब अनुसूचित जाति/जनजाति के योग्य लोगों ने अपने व्यक्तित्व को निखारा और हर तरह की परीक्षा में अपने आप को और योग्य बनाया तब ये बेईमान ब्राह्मण सवर्ण पदाधिकारियों ने साक्षात्कार और नियुक्ति की फाइलों पर कमेन्ट देने लगे-scheduled cast candidates are available but they are not suitable. जब अनुसूचित जाति/जनजाति के योग्य युवक युवतियों ने और कड़ी मेहनत की। परिणाम हुआ कि कई परीक्षाओं में अनुसूचित जाति/जनजाति के होनहार युवक युवतियों ने टाप करना शुरू किया, सामान्य सूची में कई आरक्षित उम्मीदवार अपनी जगह बनाने लगे। तब ब्राह्मण सवर्ण के विषखोपड़ों ने अनुसूचित जाति/जनजाति के विरूद्ध अन्तिम अस्त्र छोड़ा और सरकारी नियुक्तियों में अनुसूचित जाति/जनजाति के उम्मीदवारों को नहीं नियुक्त करने के लिए फाइलों पर निर्लज्जतापूर्वक कमेन्ट देने लगे-scheduled cast candidates are available and suitable but they are not acceptable.

अब ब्राह्मण सवर्ण की इस बदमाशी का क्या जवाब दिया जा सकता है सिवाय लत्तम-जूत्तम का? मार के आगे भूत भागता है यह बहुत ही कारगर कहावत है। वाजिब काम जब नियम से न हो तब बेनियम का रूख अपनाना लाजिमी है। किसी देश में क्रान्ति क्यों होती है? क्या क्रान्ति शौक से होती है? नहीं, सारी क्रान्तियों के पीछे अन्याय की पृष्ठभूमि रही है। अनुसूचित जाति/जनजाति के साथ हर काम में अन्याय हो रहा है, हर जगह अन्याय हो रहा है।

कब तक अन्याय होता रहेगा? जबतक पीड़ित लोग अन्याय सहते रहेंगे। जैसे ही शोषकों के सर पर अन्याय करने के कारण लाठियां पटकनी शुरू हो जायगी,अन्याय थम जायगा।

अपने अधिकारों का बंदरबांट हम नहीं करने देंगे। महानायक राहू ने गया नगर में आततायी आर्यों के सेनापति विष्णु की हत्या कर आततायी आर्यों के बढ़ते कदम को रोका। इतिहास गवाह है गौतम बुद्ध ने अपने त्याग और बुद्धिबल से आततायी आर्यों के अमानवीय सिद्धान्तों को सिरे से खारिज कर दिया और सदाचार का मार्ग स्थापित कर दिया। सम्राट अशोक ने इसी महामानव बुद्ध के सदाचार के सिद्धान्त को विश्वभर में फैला दिया। ब्राह्मणवाद के बढ़ते अनाचार व्यभिचार को अपने संगठन बल से क्रान्तिकारी रविदास और कबीर दोनों सहोदर भाइयों ने उखाड़ फेंका। अंग्रजों के शासनकाल में महामानव जोतिबा और माता सावित्रीबाई, फातिमा शेख ने खूनी ब्राह्मणवाद को चुनौति देते हुए बहुजनों को शिक्षित करने का काम किया। प्रातःस्मरणीय बाबा साहब आंबेडकर ने देशभर के सारे ब्राह्मण सवर्ण से लड़कर अछूतों के लिए जो कुछ प्राप्त किया, उसी को मटियामेट करने के लिए केन्द्र की यह भाजपा सरकार और निरंकुश न्यायपालिका अनुसूचित जाति/जनजाति के विरूद्ध मनमानी कर रही है।

अनुसूचित जाति/जनजाति के युवक युवती होशियारी से सबकुछ देख और समझ रहे हैं। उन्हे ब्राह्मण सवर्ण के विरूद्ध आक्रामक होना शुरू कर देना चाहिए। महान स्वतंत्रता सेनानी उद्धम सिंह का रास्ता अपनाने की जरूरत है। दुश्मन से बदला लेने के लिए ज्यादा मिटिंग भाषण करने की जरूरत नहीं होती। एक दो जन मिलकर अत्याचार करनेवालों को सबक सिखा देने की जरूरत है। संधर्ष में एक सौ गरीब मर जायेंगे तब लोगों के कान पर जूं तक नहीं रेंगता। मगर जैसे ही संधर्ष में कोई एक बड़ा अत्याचारी मारा जायगा देश में दहशत फैल जाती है। जरूरत है बड़ी मछली को मार डालने की। बड़ी मछली ढ़ेर सारी छोटी मछलियों को मारकर खाकर बड़ी होती है। अनेक छोटी मछलियों के प्राणों की रक्षा के लिए बड़ी मछलियों को समय-समय पर मारते जाना चाहिए। शहीद उद्धम सिंह जी ने हमें संधर्ष करना सिखा दिया है।

(6)

बाबा साहब के संघर्ष से मिला आरक्षण मानवीय हक है। यह संघर्ष आसानी से हल किया जा सकता है। केवल सभी वर्ग के लोगों की आबादी के अनुसार सरकारी सेवाओं में, शिक्षा में, राजनीति में अनुपातिक हिस्सेदारी दे दी जाय। जिस दिन बहुजनों की ओर से यह मांग जोर पकड़ लेगी उसी दन ब्राह्मण सवर्ण बहुजनों का पांव पकड़कर यथास्थिति यानी मिल रहा आरक्षण को शत प्रतिशत देने के लिए चिरौरी करने लगेंगे। मान्यवर कांशीराम ने ठीक कहा था कि आरक्षण देनेवाली स्थिति में आ जाओ,आरक्षण की लड़ाई समाप्त हो जायगी। ब्राह्मण सवर्ण को उनकी आबादी के अनुपात से दस या पन्द्रह प्रतिशत आरक्षण उन्हें देकर, बाकी सारे पद को अनारक्षित कर देना है।

मगर अब समय निश्चित रूप से डायवर्सिटी की लड़ाई लड़ने की है। अर्थोपार्जन के सभी स्रोतों पर जबरन कब्जा करने की जरूरत है। जबरन का मतलब अपने आप को हर तरह से सक्षम बनाकर। बिना अर्थोपार्जन के स्रोतों पर अधिकार जमाए बहुजनों के जीवन में खुशहाली नहीं आ सकती है। कहावत है कि जीवन में अर्थ है, वरना सब व्यर्थ है। अर्थ है तब सामर्थ्य, वरना हर जगह हर वक्त व्यर्थ।

सम्पन्नता के लिए व्यवसाय

कभी बहुजनों को जातिगत पेशा में बांधकर उन्हें साधनहीन श्रीहीन बना दिया गया था। आज जातिगत पेशा का बन्धन नहीं है। अर्थोपार्जन के लिए दुनियां के सारे क्षेत्र खुले पड़े हैं। कला सीखो, हुनर सीखो, अच्छी कल्पना करो, अच्छा प्रयास करो। फिर तो सुख ही सुख, सम्मान ही सम्मान। बिना व्यवसाय के आज सम्पन्न होना कठिन है। व्यवसाय पारिवारिक होता है। एक व्यवसाय में दो चार छः लोग आसानी से रोजगार पा लेते हैं। इस कारण कोई भी छोटा व्यवसाय में हर किसी को लग जाना चाहिए। बहुत से व्यवसाय बिना पूंजी के होते हैं। बाजार में बड़े-बड़े पूंजीवाले अरबों की पूंजी लगाकर रिटेलर की खोज में, हाकर की खोज में टोह लगाये बैठे रहते हैं। साख के आधार पर दूसरे की पूंजी से बाजार के आधे से ज्यादा व्यवसाय हो रहे हैं। बाजार में अपनी पहचान बनाइए, अपनी साख बनाइए और विश्वास की पूंजी पर मिहनत करके लाखपति करोडपति बन सकते हैं।

बहुत से व्यवसाय कम पूंजी में किये जाते है। अपने विश्वास के दो चार जने थोड़ी-थोड़ी पूंजी लगाकर कड़ी मिहनत से सफल व्यवसाय कर सकते हैं। व्यवसाय में जबावदेही लेने की आदत डालनी चाहिए। बहाना बनाना व्यवसाय की अकाल मौत होती है। इस कारण व्यवसाय में बहाना बनाने की कभी कल्पना भी नहीं करनी चाहिए। जो भी काम करना हो समय पर और पूरी निष्ठा से। उब व्यवसाय को असफल बना देता है। इस कारण व्यवसाय करने में उब से बचना चाहिए। रफ और टफ व्यवसाय में आता-जाता रहता है। व्यवसाय आपसे आप होता नहीं है। व्यवसाय दृढमन से किया जाता है।

बहुजन संस्थागत होना सीखें

स्कूल-कालेज खोलना चलाना, तरह-तरह का प्रशिक्षण केन्द्र खोलना और चलाना,शोध केन्द्र खोलना और चलाना इस तरह के शिक्षण संस्थान खोलकर दर्जनों लोगों को बेहतर रोजगार मुहैया कराया जा सकता है। संस्थाओं के माध्यम से सरकार बहुत से सरकारी कार्यों का सम्पादन करवा रही है। एनजीओ चलाना भी आज की तारीख में एक महत्वपूर्ण संस्था हो गयी है। किसी भी काम का एनजीओ हो सरकार उसे अनुदान देती है और उसे कई तरह का सर्वे कराती है और काम भी कराती है। अच्छे उद्येश्यों से एनजीओ चलाकर सैंकड़ों लोगों को जीविका का साधन दिया जा सकता है। बहुजन समाज के लोग इन कार्यों को जानें और एनजीओ चलाकर जीविकोपार्जन का बेहतर विकल्प प्राप्त करें। डायवर्सिटी आज की तारीख में बेहतर और सम्मानित जीवन का जरूरी आयाम हो गया है। बिना डायवर्सिटी के बहुजनों का कल्याण नहीं। जरूरत है कि बहुजन समाज के लोग अपनी सारी उर्जा डायवर्सिटी प्राप्त करने में लगायें। जितनी उर्जा आजतक बहुजनों ने आरक्षण प्राप्त करने के लिए लगाया है, उन सारी उर्जा को डायवर्सिटी को अच्छी तरह से समझने और अपनाने में लगा दें तब बहुजनों का कायाकल्प होने में कुछ भी समय नहीं लगेगा।

(7)

कहा गया है कि कोई रात इतनी लम्बी नहीं होती जिसकी सुबह न हो। अफ्रीका के काले लोगों ने बहुत लम्बा समय तक दुर्दिन के दिन गुजारे। पीढ़ियां गुजर गयीं। मगर समय के अन्तराल में सबेरा को आना था, सो आया। भारत देश के बहुजनों के पुरूखों ने बेहद दुर्दशा के दिन गुजारे। आज के बहुजन तो दुर्दशा के चन्द दास्तान से त्राहिमाम कर रहे हैं। बहुजन समाज के मार्गदाताओं ने समाज में व्याप्त बहुत से दुर्दशाओं को अपने त्याग और परिश्रम से मिटा दिया है। अब आज के बहुजनों को दुर्दशा की कुछ धुंधली तस्वीरों को मिटाने के लिए श्रम करना है।

बाबा साहब आंबेडकर ने सुशिक्षित बनकर समाज के उंचे पायदान पर चढ़ने का जो मिसाल कायम कर दिया है, उसका अनुसरण आज के बहुजनों को करना है। शोषक समाज के लोग भारी अड़चनें पैदा करने का चौतरफा प्रयास करते रहेंगे। मगर अब बहुजन अपने विवेक से उन शोषक समाज के लोगों को भी वैसे ही धोखा देना सीख लेना चाहिए जैसा उन्होंने हर जगह धोखा देकर बहुजनों के भविष्य से खिलवाड़ किया है।

खेतिहर मजदूरों को वर्षांत के मौसम में हड़ताल करने का प्रशिक्षण देते रहना चाहिए। ऐसा करने से खेतिहर मजदूरों का भाव सदा के लिए बढ़ जायगा। भूमि सामंत को मजदूरों द्वारा खेती के समय ही हड़ताल करने की ट्रेनिंग देकर सुखी और सुरक्षित बनाया जा सकता है। नगर में बडे उद्योग मजदूर और मशीन दो तत्वों से चलायमान हैं। मशीन के पीछे भी मजदूर ही हैं। मगर नगर के उद्योगों के मजदूर पार्टी लाइन पर संघ और संगठन में बंधे हैं। इन संघों और संगठनों को अनुसूचित जाति/जनजाति/ बैकवर्ड और फारवर्ड ग्रुप में बांटकर बहुजन शक्ति मजदूरों में कायम करनी होगी। अगर मजदूर शोषक और शोषित ग्रुप में बंट जायें तब बड़े-बड़े कारपोरेट को जमीन पर पटका जा सकता है। बहुजन शक्ति का भाव कायम होगा तब बहुजन सम्पत्तिवान बनेंगे।

हर संस्था में ब्राह्मण सवर्ण जड़ जमाये हुए हैं। इन संस्थाओं को कमजोर करके बहुजन संस्थागत हो सकते हैं। बिहार राज्य में बहुजन संस्था कायम करने में विहार के एक बहुजन राजनेता ने बहुत ही कामयाबी दिमाग लगाया और वे सफल भी हो गये। वे राजनेता थे रामलखन सिंह यादव। अब वे परिनिर्वाण प्राप्त हो गये। वे 1970 के दशक से बिहार में कबीना मंत्री रहे। उन्होंने अपने नाम से बिहार के हर जिला में स्कूल,कालेज खोलना शुरू किया। बिहार राज्य में पिछड़ी जाति के नाम का पहला कालेज रामलखन सिंह यादव के नाम पर ही खुला। उन्होंने सतत प्रयास करके बिहार के हर जिला में अपने नाम से राम लखन सिंह यादव कालेज खोला और खुलवाया। उनके नाम पर खुले सारे स्कूल कालेज सरकारी जमीनों का अवैध दखल करके हुआ। सच्चाई यह है कि उनके द्वारा या बाद में उनके नाम पर उनके संरक्षण में खोले गये सारे के सारे स्कूल कालेज आज तक सुगमता से चल रहे हैं। उनके द्वारा खोले गये अनेक कालेज आज कान्स्टूयेंट कालेज हैं।

इस रामलखन सिंह यादव कालेज खुलने से बिहार में कालेज और यूनिवर्सिटियों में ब्राह्मण सवर्ण छात्रों और लेक्चरों का दबदबा कम ही नहीं, समाप्त हो गया। कालक्रम में रामलखन सिंह यादव की देखा-देखी अनेक पटेल कालेज बिहार में खुल गये। मगर सच्चाई

यह है कि जितना संरक्षण बहुजन समाज के छात्रों को रामलखन सिंह यादव कालेज से मिलता है, उतना पटेल कालेज से नहीं। बिहार में ब्राह्मण सवर्ण को संस्था के स्तर पर यादव और कुर्मी समाज के लोगों ने बेहतर जवाब दिया है। ऐसी चाल अनुसूचित जाति के किसी दबंग राजनेता या बुद्धिजीवी ने नहीं दिया। अनुसूचित जाति/जनजाति के लोग भारत देश की आजादी के सत्तर साल बाद भी फिसड्डी साबित हुए। रामविलास पासवान जिन्दगी भर केवल आसमान-पासवान करते रह गया।

अर्थोपार्जन के स्रोतो पर और संस्थाओं पर निर्भय, निर्लज्ज, निर्मम होकर कब्जा करने से ही बात बनेगी। शोषक समाज कमीना समाज है। ऐसा उनलोगों ने अपने पशु व्यवहार और पशु बुद्धि से साबित कर दिया है। बहुजनों का चतुर्दिक प्रयास से ही चतुर्दिक प्राप्ति होगी। संस्था संगठन चाहती है। मगर व्यापार तो एकाकी करके भी बेहतर बना जा सकता है और बेहतर बनाया जा सकता है। व्यापार ही बहुजनों को बेड़ापार लगायेगा। बहुजन डायवर्सिटी मिशन का अभियान बहुजनों की आंखें खोलने का काम कर रहा है। पूरे भारत देश में बहुजन डायवर्सिटी मिशन पहली संस्था है जो बहुजनों को सत्ता से लेकर संस्था और व्यापार तक पर पछड़कर कब्जा करने का अभियान चला रहा है। इस अभियान में बहुजनों को सत्ता से लेकर संस्था और व्यापार तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

(8)

आज भारत की न्यायपालिका सवर्णवादी है

If you want to gain the confidence of the people then I submit that the only way of doing it is to constitute your government your ministry your civil services in such a way that it does not become the monopoly of any particular class or any particular community–Dr baba sahab Ambedkar writings and speeches_vol _*2* page 176

उपरोक्त हिदायत और सलाह बाबा साहब आंबेडकर ने कितनी दूरदर्शिता से दी थी। मगर सत्ता के दलाल कांग्रेसियों ने शासन-प्रशासन और न्यायपालिका को शुरू से ही ब्राह्मणों और सवर्णों का ऐशगाह बनाकर रख दिया। हिन्दू धर्म आंख मूंदकर ब्राह्मण सवर्ण को श्रेष्ठ मानने की और अपने आप को ब्राह्मण सवर्ण से हीन मानने की हिदायत धर्म के आधार पर देता है। भारत देश की आजादी के समय से ही न्ययपालिका में ब्राह्मण सवर्ण योग्यता नहीं जाति के आधार पर भर दिये गये हैं। ब्राह्मण चाहें नेता हों या न्यायाधीश हों वे गैर ब्राह्मणों से धृणा करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते हैं। इस कारण न्यायपालिका में वंशगत बहाल न्यायाधीश बहुजनों के साथ न्याय कम अन्याय करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते हैं। तब बहुजनों के ज्वलंत इशू को भी ब्राह्मण जज क्यों संज्ञान में लेंगे? इस सम्बन्ध में भी महान कानूनविद बाबा साहब ने न्यायपालिका पर संदेह व्यक्त करते हुए कहा है-। It will be said there are civil and criminal courts for the redress of any of these injuries.There are the courts indeed,but India does not breed Hampdens. One must have courage to go to the courts ,money to legal knowledge ,and meet legal expences,and means to

live during the case and appeals. Further most cases depend upon the decision of the first court, and these courts are presided over by officials who are sometimes corrupt and who generally for other reasons sympethises with the wealthy and landed classes to which they belong–Dr.Baba Sahab Ambedkar_writings and speechess vol_1 page-407.

बाबा साहब आंबेडकर इस तथ्य से उस समय अवगत थे कि जातिवाद से ग्रस्त न्यायाधीश चाहकर भी बहुजनों को न्याय देने में असमर्थ रहेंगे। न्यायधीशों के लिए बहुजनों के पक्ष में न्याय देने में अपना ब्राह्मण सवर्ण वर्ग की नैया डांवाडोल नजर आती है। अब संविधान के विरूद्ध जानेवाले अपने नाजायज हक के खातिर भारत के महान और पवित्र संविधान को भी संसद या सुप्रीम कोर्ट के सामने भी जलाते हैं तब भी कोई बात नहीं। वे तो अन्दर से खुश हो रहे हैं कि उनकी जाति के बहादुरों ने उस भारत के संविधान को जलाया जिसके कारण ब्राह्मण सवर्ण की धार्मिक श्रेष्ठता समाप्त हो गयी। ऐसी न्यायपालिका को लानत।

भारत के न्यायाधीश चाहें सिविल कोर्ट के हों या सुप्रीम कोर्ट के वे जातिवादी पहले हैं, न्यायवादी बाद में। वे करें तो क्या? हिन्दू धर्म शास्त्र हिन्दुओं को बहुजनों के विरूद्ध बेईमान बनने की शक्ति देता है। भारत का हर न्यायाधीश अपने घर से जब कोर्ट के लिए चलता है तब हनुमान को गणेष को और गीता को प्रणाम करके घर से निकलता है। कोई ऐसा हिन्दू न्यायाधीश नहीं है जो न्यायालय जाने के लिए घर से निकलते समय भारत के महान संविधान को प्रणाम करके निकलता है। भारत के महान संविधान की छत्रछाया में न्यायाधीश बहाल भी होता है और काम भी करता है। मगर उसकी सारी निष्ठा गीता और रामायण के प्रति है। हिन्दू न्यायाधीश भारत के संविधान की शपथ भर लेता है। क्योंकि कानूनी बाध्यता है। परन्तु हर हिन्दू न्यायाधीश पूजा-पाठ रामायण और गीता का करता है जो उन्हें निरंकुश और बेईमान होना सिखाता है। वर्ण और जाति के प्रति निष्ठा रखने का सीधा सम्बन्ध बेईमान होना है।

इसी कारण बहुजनों के अहित करनेवाले किसी भी मामले का सीधा संज्ञान ब्राह्मण सवर्ण न्यायाधीश नहीं लेते। अगर इसके लिए बहुजन समाज के लोग उनके कोर्ट में मामला ले भी जायेंगे तब भी बहुजनों के पक्ष में वे न्याय देने की मानसिकता में नहीं रहते। यही भरतीय न्यायालय की आज की तारीख में बेहालत है।

मुझे अरब देश के दौरा के दरम्यान यह जानकारी मिली कि अरब के सुलतान न्यायालय में अरब में पैदा हुए और रह रहे किसी न्यायविद को इस कारण न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति नहीं करते कि कहीं न्यायाधीश न्यायालय में भाई भतीजावाद न करने लगे। इस कारण अरब के न्यायालय में न्यायाधीश अनिवार्य रूप से मुसलमान न्यायविद बहाल किये जाते हैं, मगर अरब के नहीं,किसी दूसरे देश के मुसलमान न्यायविद को। क्या न्याय की रक्षा के लिए भारत भर के न्यायालयों से ब्राह्मण सवर्ण न्यायविद को बाहर रखा जा सकता है? ब्राह्मण सवर्ण राजनीतिज्ञ तो ऐसा करने की कल्पना भी नहीं कर सकते। मगर बहुजन समाज के रातनीतिज्ञ न्याय की रक्षा के लिए ब्राह्मण सवर्ण न्यायविद को न्यायालय की नियुक्ति से बाहर रखने और करने की अभियान चलायें तो बेहतर।

(9)

आज की तारीख में यह मानकर चलना चाहिए कि अनुसूचित जाति-जनजाति के लोगों को जिन सरकारी पदों पर भी नियुक्ति हुई है, वह केवल और केवल उनकी बेहतर योग्यता के आधार पर हुई है। कारण अनुसूचित जाति⁄जनजाति के विरूद्ध सारा ब्राह्मण और सवर्ण समाज हाथ धोकर पड़े रहते हैं। अनुसूचित जाति⁄ जनजाति को जब भी किसी पद पर नियुक्ति होती है,तब ब्राह्मण सवर्ण को लगता है कि वे सारे पद उनके बाप दादा के थे, जिनपर आरक्षित वर्ग के लागों की नियुक्ति हो गयी। यही कारण है कि अनुसूचित जाति⁄जनजाति को मिल रहे आरक्षण को समाप्त करने के लिए सबसे ज्यादा न्यायधीश लोगों में छटपटाहट है। वे असमर्थ हो रहे हैं राजनीतिज्ञों से कुछ राजनीतिक दलों से।

अनुसूचित जाति⁄जनजाति में जिन कुछ वर्गों में लोगों ने शिक्षा को समझा और अपनाया उसके कुछ ऐतिहासिक कारण रहे हैं। इसी तरह जिन समाज के लोगों ने आजतक भी शिक्षा को नहीं समझा और नहीं अपनाया उसके भी कुछ ऐतिहासिक कारण रहे हैं। इन कारणों को बहुजन समाज के बुद्धिजीवी लोगों ने भी नहीं समझा, तब आम लोग बेचारे क्या समझेंगे ।

वह ऐतिहासक सच्चाई यह है कि अनुसूचित जाति या जनजाति या पिछड़ी जाति के जिस समाज के लोगों को जमीन्दारी सिस्टम में जमीन्दारों के पास या आगे-पीछे रहने का मौका मिला उनमें अन्य समाज के लोगों की अपेक्षा बुद्धि विवके ज्यादा रहा। जिस समाज के लोगों को जमीन्दारी सिस्टम मे जमीन्दार या उसके कारिन्दों के आसपास रहने और जीने का अवसर नहीं मिला या कम मिला, वे बुद्धि विवके में कमजोर रहे। परिणाम यह हुआ कि जब भारत देश आजाद हुआ, तब शिक्षा लेना जरूरी है यह बात जमीन्दारों या उसके कारिन्दों के आसपास रहने वाले समुदाय के लोगों ने ज्यादा समझा। तभी वे लोग शिक्षित भी हुए और अपने बाल बच्चों को भी शिक्षित करते रहे। जिस समुदाय के लोगों को जमीन्दार या उनके कारिन्दों के पास रहने जीने का मौका नहीं मिला, वे बुद्धि विवके की कमी के कारण शिक्षा के महत्व को नहीं समझ पाये।

मिसाल के तौर पर भारत देश की गुलामी के समय अंग्रेजों का राज था और अंग्रेज जमीन्दारों के मार्फत अपना शासन किया करते थे। जमीन्दारों के पास या उनके कारिन्दों के पास सेवा टहल अरदास करनेवालों में तब के अछूत समाज के धोबी, चमार, दुसाध, पासी समाज के लोग ज्यादा रहा करते थे। धोबी समाज के लोग जमीन्दारों या उसके कारिन्दों के कपड़े आदि धोने में उनके करीब जाया आया करते थे। चमार चमड़े का जूता बनाकर जमीन्दारों या उसके कारिन्दों को दिया करते थे। तब पका हुआ चमड़े का जूता फैशन में नहीं था। दुसाध चौकीदार और गोड़ायत पदवी धारण कर जमीन्दार और उसके कारिन्दे के पास आया-जाया करते थे। पासी समाज के लोग जमीन्दार और उसके करिन्दों को ताड़ी पिलाया और पहुंचाया करते थे। इर्गंलिस वाइन तो भारत में 1800 ईस्वी में पहुचा। भारत में जमीन्दारी सिसस्टम 1700 ईस्वी से लागू हुई है। जमीन्दारी के समय अछूत समाज के इन्हीं चार जाति के लोगों का जमीन्दार या उसके कारिन्दों से सहज सपर्क हुआ करता था। इसी कारण इन समाज के लोगों का बुद्धि विवेक थोड़ा ज्यादा प्राप्त हुआ। इसी कारण देश की आजादी के बाद इस समाज के लोग ज्यादा शिक्षा को प्राप्त किये और शिक्षित भी हुए।

तब की अन्य अछूत जातियों के लोग जैसे भूईयां, मूसहर, तांती, दबगर, डोम, भंगी, बंसफोड आदि जाति के लोगों का जमीन्दार या उसके कारिन्दों से उसकी जातिय पेशा से किसी कारण सम्पर्क भी नहीं होता था और न आना जाना होता था। परिणाम यह हुआ कि जमीन्दारी प्रशासन से दूर रहते हुए इन जातियों के लोग सदा उपेक्षित,असभ्य और डरपोक हो गये। आजादी के समय बच्चों का स्कूल जाना बहुत भय का काम था। बच्चे स्कूल जाते हुए चिचिआते थे और उसके मां-बाप भी अनजान दहशत में रहते थे। गांव के गरीब तो स्कूल के मास्टर से भी डरते थे। अनुसूचित जाति के कई समाज के लोगों को शिक्षा में पिछड़ जाने का यही ऐतिहासिक कारण है। इस तथ्य से लोगों को अवगत कराना चाहिए।

ब्राह्मण तो भारत देश में प्रणम्य और सवर्ण बाबू साहब बनकर धौंस जमाकर समाज में हर श्रेष्ठता पर कब्जा किये रहे। अनुसूचित जाति के कुछ समुदाय जैसे धोबी,चमार,दुसाध और पासी जमीन्दारों और उनके कारिन्दों के आसपास रहकर ज्यादा बुद्धि विवके प्राप्त किये वैसे ही आज के पिछड़े वर्ग के ग्वाला, कोइरी, कुर्मी, बनियां, तेली, कहार, कलवार भी जमीन्दारों और उनके कारिन्दों के आसपास रहकर ज्यादा बुद्धि और विवके में समर्थ हुए। इन्हीं समर्थ समाज के लोगों से सामाजिक संधर्ष में थोड़ा-बहुत ब्राह्मणों को नहीं भूमिहार,राजपूत और कायस्थों को जवाब देने लगे। प्रणम्य होने के कारण उदंड ब्राह्मणों को भी भारत भर के हिन्दुओं ने करारा जवाब नहीं दिया। जबकि ब्राह्मण इस भारतीय समाज में सबसे नाशकारक समुदाय रहे। अंग्रेजों के राज में हड़प नीति के कारण लार्ड डलहौजी शासन काल 1848-1856 ई0 तक सबसे बदनाम गवरनर जेनरल रहा। हिन्दू समाज में अपनी हड़पनीति के कारण ब्राह्मण सबसे बदनाम और खूंखार समुदाय पहले भी था और आज भी हैं।

(10)

आगामी लोकसभा चुनाव 2019 में विनाशकारी भाजपा को शिकस्त देने के लिए विपक्षी दल एकजुट हो रहे हैं। बिहार में राजद के नेतृत्व में अन्य विपक्षी दलों को भाजपा को हराने के लिए और अपने आप को बचाने के लिए एकजुट होना ही होगा। अब राजद में लालू प्रसाद अस्वस्थ्य होने के कारण नहीं भी हैं, तब भी उनका होनहार पुत्र तेजस्वी ने मोर्चा सम्भाल लिया है। बिहार में राजद का साथ कांग्रेस, बसपा, सपा को देना ही होगा। बिहार में अकेला सपा,बसपा और कांग्रेस को कोई पूछनेवाला नहीं हैं। बिहार राज्य में अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों को भाजपा को हराने के लिए एकजुट होकर राजद का साथ देना चाहिए

झारखण्ड में भाजपा की हार झामुमो की सूझबूझ पर निर्भर करेगी। हेमंत सोरेन और बाबूलाल मरांडी अगर आपस में मिलकर भाजपा को हराने के लिए कमर कस लें तब भाजपा की हार तय है। झारखण्ड की जनता भाजपा से सबसे ज्यादा परेशान है। बाबूलाल मरांडी और हेमंत सोरेन आपस में बेहतर सूझबूझ से मिलकर भाजपा के विरूद्ध लड़ जायें तब भाजपा को गिनने के लिए एक भी सांसद झारखण्ड में नहीं मिलेगा। झारखण्ड के सभी अनुसूचित जाति/जनजाति के मतदाताओं को हेमंत सोरेन और बाबूलाल मरांडी के गठबन्धन संगठन को आंख मूंदकर मतदान करना चाहिए।

उत्तर प्रदेश में बसपा के बैनर तले सपा और कांग्रेस को गोलबन्द होकर भाजपा को हराने की पूरी सम्भावना है। उत्तर प्रदेश में अगर किसी भी कारण से बसपा, सपा,कांग्रेस अलग

थलग रहकर चुनाव लड़ने की भूल की, तब बसपा-सपा कांग्रेस तीनों दल दल-दल में फंसेगे और खूनी भाजपा सबको रौंदती हुई विजयी होगी। उत्तर प्रदेश में भाजपा को हराने के लिए अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों को भाजपा को हराने के लिए बसपा को साथ देना चाहिए।

पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस के बैनर तले बसपा,सपा, कांग्रेस सबको एकजुट होकर खूनी भाजपा को हराना ही चाहिए। अगर ऐसा हुआ तब खूनी भाजपा बंगाल में बुरी तरह पराजित होगी। अगर ऐसा नहीं हुआ तब भाजपा तृणमूल को रौंदकर जीतेगी। पश्चिम बंगाल में भाजपा को हराने के लिए अनुसूचित जाति नजाति के लेगों को तृणमूल कांग्रेस का साथ देना चाहिए।

दिल्ली में आप दल, बसपा और कांग्रेस तीनों मिलकर भाजपा को रौंदने का उपाय करें तब बेहतर परिणाम निकलेगा। दिल्ली में भाजपा को हराने के लिए अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों को बसपा का साथ देना चाहिए।

मध्य प्रदेश में भाजपा को हराने के लिए बसपा बहुत ही अच्छी स्थिति में है। इस कारण आगामी लोकसभा चुनाव में अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों को भाजपा को हराने के लिए बसपा को साथ देना चाहिए।

आगामी लोकसभा चुनाव में भाजपा को हराने के लिए बसपा बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका में रहेगी। इस कारण अनुसूचित जाति/जनजाति के लोग हर हालत में बसपा का साथ दें।

(लेखक आंबेडकर मिशन पत्रिका के संपादक हैं। संपर्क–9507826323)

राजवंशी जे. ए. आंबेडकर
–पटना, बिहार

1. मेरे जवाब अधिकांश के लिए हास्यास्पद है और संक्षेप में अगर अपनी बातों को रखने का प्रयास करूँ तो खुद मेरे लिए भी हास्यास्पद है!!

हक़मार वर्ग कौन? के जगह मैं अपने उत्तर की स्पष्टता के लिए हक़मार वर्ग कौन कौन? करूँगा।

वर्ग के अनुसार जवाब है–सवर्ण एवं सवर्ण-दलित।

सवर्ण दलित मेरा द्वारा यह एकदम नया अनूठा और एक ऐसे परिभाषा के साथ गढ़ा हुआ शब्द है जिसका वजूद सदियों तक रहेगा। असल में मेरे द्वारा जनित शब्द किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं, बल्कि उस विशेष के लिए है, जो आने वाले अगले कुछ सालों में वर्ग विशेष के रूप में बनेगा। शब्द की संक्षेपता से मजबूर मैं यही कहूंगा दलितों के अंदर दलित वर्ग के उपरी मध्यम वर्ग के परिवार, जो अपने परिवार बच्चों को श्रेणी-1 का इलाज दे सकतें हैं वे स्वतः आरक्षण छोड़ें और अपने गरीब भाइयों को मुख्यधारा में आने का मौका दें! उनका

यह त्याग ब्राह्मणों द्वारा मांसाहार त्यागने से भी बड़ा त्याग होगा। अगर ऐसा नहीं होता तो सरकार यह तय करे कि दलित समाज के अंदर मौजद उन परिवारों को आरक्षण का लाभ तब तक नहीं मिलेगा जब तक उनके द्वारा टैक्स की रकम न्यूनतम इतनी भरी जाती हो। (राशि का निर्धारण उच्च मध्यम वर्ग के लोगों को ध्यान में रखकर किया जाए)।

यह मुमिकन नहीं, ऐसा कहना मैं समझता हूं न सिर्फ कामचोरी होगी, बल्कि आज भी असहाय लोगों के साथ की गई आधुनिक युग की आधुनिक बेईमानी होगी। क्योंकि जिस देश में तीन स्तरों वाली सरकार चल सकती है, क्या वहां इतना भी सम्भव नहीं!! सभी बहुजन संगठन और सरकार चाहें तो मैं मुफ्त में ड्राफ्ट तैयार करने को तैयार हूं। मेरा दावा है यह सुझाव न सिर्फ दलितों के बीच, बल्कि पिछड़ों और तो और सवर्णो में भी लागू किया जा सकता है।

2. बिल्कुल ही न्यायसंगत नहीं, बल्कि यह दोहरी चाल है। मैंने जिसका ऊपर वर्णन किया है। हमारे दोयम दर्जे के नेताओं ने उस मोड़ पर ला खड़ा किया है, जहां हमें बड़े ही सावधानी से बीच का रास्ता, जिसे खेल की दुनिया में डिफेन्स कहते हैं, चुनना ही पड़ेगा! हम यहां फ्रंट फुट पर नहीं खेल सकतें : यहां हमें बैक फुट पर ही खेलना होगा। फ्रंट फुट पर खेलने का अर्थ होगा या तो मंत्री को जाने दो या फिर राजा को! और वह भी एक प्यादे के चाल से!! अकल्पनीय चाल!!! इसमें भी उनकी दक्षता का प्रमाण नहीं है बल्कि हमारे नीरस नेताओं द्वारा दिया गया मौका है। बीच का रास्ता यही है कि ये 20-25 नेता (श्रेणी-1 के लोग) खुद त्याग करें।

3. खैर उसका कथन तो एक षड्यन्त्रकारी राजनीतिक कथन था। ऐसे कई कथन आरएसएस संगठन द्वारा जारी किये जातें हैं जिनसे उन लोगों को दलित क्रांति सोच और आगे की वस्तुस्थिति का आभास होता रहे। हां सच है कि सरकारी नौकरियों में कमी आयी है, लेकिन हमें सरकार में खत्म होते आरक्षण के तरफ न देखते हुए न्यायालय/विश्वविद्यालय यहां तक कि निजी संस्थाओं में संख्या अनुपात में आरक्षण के लिए जुझारू आंदोलन करना चाहिए। इस विभाजन को रोकने का भी विकल्प यही है और इस विभाजन में वो कितना किस हद तक सफल हो सकतें हैं उसी के जांच के लिए वह कथन था।

4. नहीं, अग्रसर जातियों को अलग रखकर हम कोई आंदोलन नहीं कर सकते क्योंकि आंदोलन के लिए 'इंतेजाम' अग्रसर दलित जातियां ही कर सकती हैं। लेकिन दूसरा सच यह भी है कि संकुचित होते संसाधन का बंटवारा किये बिना भी उस आंदोलन के सफलता का क्या मायने रह जायेगा, अगर दलित अभावग्रस्त लोग अग्रसर न हो सकें? ध्यान दें मैं लोग शब्द का उच्चारण कर रहा न कि वर्ग!! असल में दलितों के अंदर अग्रसर वर्ग है ही नहीं, बल्कि अग्रसर लोग हैं जो सभी जातियों में लगभग समान से हैं।

5. बिल्कुल, यथार्त! बल्कि उससे भी कई कदम आगे होगा! उस बन्दर ने सिर्फ उस चुराई हुई रोटी का उपभोग किया था। यहां तो ब्रह्मांड में मौजूद समस्त संसाधनों पर पृथ्वी विनाश तक कब्जा हो जाएगा। क्योंकि ऐसा शायद ही सम्भव हो कि फिर अंग्रेज आएं और आंबेडकर लड़ सकें!!

6. बेहतर! या खराब का सवाल ही कहा हैं? जब विकल्प ही यही है!! दूसरा कोई

विकल्प ही नहीं है हमारे पास। हमें या तो पहले त्याग करने होंगे या अपने पिछड़े लोगों को यह भरोसा देना होगा कि आंदोलन उपरांत तुम्हें भी वो सारे हक मौके बराबर मिलेंगे : आओ साथ लड़ते हैं यह हम सब की लड़ाई है।

7. बिल्कुल। निसंदेह!

8. इसका जवाब ऊपर हमनें भी दिया है और आपके भी कथनों में साफ-साफ झलकता है। पहला कारण न्यायालय पर अनपढ़ गंवार जात का कब्जा। और दूसरा सरकार द्वार न्यायालयों का संचालन! जिसमें वो तथाकथित आरएसएस वाले हमें परास्त करने के साथ संविधान को भी आगामी दिनों में अयोग्य घोषित कर देना चाहतें हैं।

9. यह आपने बड़ी लाजवाब बात रखी और विश्वस्तरीय विचार की बात रखी। आपके इतने बड़े कथन पर मेरा जवाब बस इतना ही है कि अगर आरएसएस द्वारा थोपी गई जातीय आरक्षण पद्धति जारी है तो फिर दलितों या पिछड़ों के बीच अग्रसर वर्ग की तलाश क्यों चल रही है? हास्यास्पद है कि नहीं!

असल में आरएसएस वाले धूर्त होतें हैं लेकिन उससे बड़े बेवकूफ होतें हैं। वो अपने द्वारा ही इतने तरह के षड्यन्त्रकारी जाल बुन देतें हैं कि खुद ही उसमें उलझ जातें हैं। असल में थोपी हुई जातिय आरक्षण व्यवस्था को बड़े ही मेहनत से लोहे में तपाकर आंबेडकर ने उसे जातीय के अंदर योग्यता आधारित आरक्षण की व्यवस्था कर दी, जिसकी तुलना दुनिया में कहीं और नहीं है। मैं इसी पद्धति को और आगे बढ़ातें हुए यानी जातियों के अंदर योग्यता और योग्यता को समान अवसर देने की बात कर रहा हूँ। और अपनी निसन्देह योग्यता से सफल हुए उन लोगों को सवर्ण दलित का संज्ञा दे रहा हूँ जो सिर्फ सफल हुए : सामाजिक लाभ न तो खुद ले सकें न समाज को दे सके! जाति के अंदर योग्यता और योग्यता के अंदर योग्यता के लिए समान अवसर के मेरे सिद्धान्त को कई लोगों ने माना भी है, सराहा भी है!

10. मोदी भी कोई नेता हैं! आरएसएस जनित मुखौटा हैं। हमें मोदी बिंदू पर सोचना भी नहीं चाहिए। असल में उनके एक बयान पर किसी की नजर नहीं गई जिसमें उसने खुद ही खुद को हारा हुआ घोषित कर रखा है। सभी को याद होगा एक शायरी जो अक्सर राजेश खन्ना कहा करते थें जो वो अमिताभ से हार के बाद सभी मंचों दोहराते रहतें थें 'आज मैं हूं जहां कल कोई और था, यह भी एक दौर है वो भी एक दौर था।'

अब रही आरएसएस की बात तो उसे हम 75 बनाम 25 के मत से हरा सकतें हैं लेकिन सोने पर सुहागा होगा यह होगा कि हम टिकट वितरण से पूर्व सभी राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय पार्टियों को sc/st/obc/muslim को ही टिकट देने के लिए विवश कर दें। इसके लिए मैंने ''vote for our neta warna sahenge nota" का आवाहन भी किया है, जिसे कई नेता अपने रूपों में प्रचार प्रसार कर रहें हैं। संसद में हमें अपने प्रधानमंत्री पर ज्यादा विचार न करते हुए अपने अधिक से अधिक प्रतिनिधि को भेजना चाहिए! हमारे लोग संसद में अधिकाधिक हो जाएं। फिर कौन सा दल या किस वर्ग का pm है इसपे बहुत फर्क नहीं पड़ता।

(लेखक एक पत्रिका के संपादक है। संपर्क : मो. 8651612333)
Ashokjyotiba@gmail.com

अरविंद कुमार
–जेएनयू, दिल्ली

1. प्रमुखता से कहा जाए तो वर्ण व्यवस्थ से उत्पन्न सुविधाभोगी वर्ग ही शोषक है, लेकिन हाल फिलहाल में आरक्षित वर्ग की कुछ जातियाँ भी शोषक बन कर आई हैं।
2. ऐसी किसी भी नीति का समर्थन करता हूँ, जिसका ज्यादा से ज्यादा लोगों को फायदा मिले। कुछ पीढ़ियों के बाद लोगों को आरक्षण छोड़ देना चाहिए।
3. मुख्य मुद्दा यह है कि सभी समाज का प्रतिनिधित्व निकलकर आए, अगर इससे समाज में संघर्ष बढ़ता है तो भी यह प्रक्रिया जारी रखनी चाहिए।
4. आर्थिक विषमता की लड़ाई को जाति के नाम पर नहीं लड़ा जा सकता। उसके लिए सभी समुदाय के लोगों को इकठठा करना होगा।
5. हाँ ऐसा हो सकता है!
6. सभी जातियों को ऐसा करना चाहिये, लेकिन वो करेंगी कैसे, यह मुख्य चुनौती है!
7. दक्षिण अफ्रीका के बारे में मुझे बृहद जानकारी नहीं है, तो दावे के साथ कुछ भी नहीं कह सकता।
8. क्योंकि वहाँ कार्यरत लोग इस विषमता का फायदा उठा रहे हैं।
9. जिन जातियों को हक़मार कहा जा रहा है उनको भी अपने अंदर झांक कर देखने की जरूरत है, और अपनी कमियों को दूर करने की जरूरत है, खासकर राजनैतिक नेतृत्व को।
10. मुझे इस संबंध में कोई ठोस जानकारी नहीं हैं, इसलिए दावे के साथ कुछ नहीं कर सकता।

(लेखक जेएनयू में शोधार्थी हैं। संपर्क–9873877896)

विजय कुमार त्रिशरण
–भवनाथपुर, झारखंड

इसमें कोई शक नहीं कि दलित-बहुजनों के हक़ मारने वाले दैवीय अधिकारप्राप्त वर्ग ही हैं। वर्णव्यवस्था का जन्मजात वर्ग ही दलित-पिछड़ों का शोषक है। भारत में ब्राह्मण प्राचीन काल से ही सबसे बड़ा आरक्षण-भोगी जाति रहा है। ऋग्वेद प्रतिपादित 'चार्तुवर्ण विधान वास्तव

में ब्राह्मणों की आरक्षण व्यवस्था है।' वर्ण व्यवस्था के जरिये ब्राह्मणों ने सारे श्रेष्ठ पद जैसे पुरोहित, मंत्री, सेनापति और न्यायधीश का पद, श्रेष्ठ कार्य जैसे पढ़ना, पढ़ाना, दान लेना, यज्ञ करना तथा पुरोहिताई के कार्य को अपने लिये आरक्षित कर रखा था। यही कारण है कि 'ब्राह्मण शुरू से ही शिक्षित वर्ग रहा, जिसके पास बुद्धि तो थी, लेकिन स्वार्थ-प्रेरित थी। शासन करने के अधिकार और अन्य विषेशाधिकार ने ब्राह्मणों को और स्वार्थी बना दिया और उनमें ऐसी प्रेरणा भर दी कि वे अपनी शिक्षा का उपयोग ज्ञान की संवृद्धि के लिए न करके, अपने समुदाय के उपयोग के लिए और बहुजन समाज की उन्नति के विरूद्ध करने लगे।'

पुरोहिताई जैसे कार्यों में उसे बेशुमार अर्थोपार्जन के साथ मुफ्त में सम्मान भी प्राप्त था। वे अपने को भूदेव (धरती का देवता) घोषित कर दिये। मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मणों को चल, अचल सम्पति के अलावें स्त्री भी दान में लेने का अधिकार प्राप्त था। आज भी भारत में पंडा, पुरोहित, शंकराचार्य का पद ब्राह्मणों के लिये ही आरक्षित है। ब्राह्मण आरक्षण के कारण ही शूद्र साधक स्वामी विवेकानंद सर्वश्रेष्ठ धर्मज्ञ के खिताब से नवाजे जाने के बावजूद भारत के किसी धाम का शंकराचार्य न बन सके। स्वामी विवेकानंद कायस्थ जाति के थे और ब्राह्मणी शास्त्रों में कायस्थ को शूद्रों की श्रेणी में रखा गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि 'भारत के सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक मुद्दे हिन्दू आरक्षण (वर्ण व्यवस्था) से जुड़े रहे हैं। वर्णवादी आरक्षण जिसमें संपदा संसाधनों, उच्चमान के लाभकारी पेशों, मोक्ष के लिए हरि सेवा के साथ बाबा जी, बाबूसाहेब, सेठ जी, महंत जी के रूप में बेतहाशा सामाजिक मर्यादा सिर्फ हिन्दू आरक्षणवादियों के लिए आरक्षित रही, वह भी हजारों साल से। जिन ब्राह्मणों ने अपनी और अपनी भावी पीढ़िओं के लिए जन्मजात आरक्षण का लाभ प्राप्त कर जन्म से ही श्रेष्ठत्व की उपाधि प्राप्त की है, वे येनकेन प्रकारेण हिन्दू आरक्षण को कायम रखने के लिए कटिबद्ध हैं।

सवर्ण बहुजनों की आरक्षण पर वे ही बवाल और शोर मचाते हैं कि आरक्षित वर्ग के समृद्ध लोगों की वजह से अनारक्षित गरीबों का हक मारा जा रहा है। हक़ तो आरक्षित वर्ग का मारा जा रहा है। उनके बैकलॉग नहीं भरे जा रहें हैं। लगभग सभी विभागों में रिक्तियां हैं। आरक्षण सरकारी नौकरियों में है, परन्तु इसको समाप्त कर नीजिकरण किए जा रहें हैं, नौकरियों की संख्या घटाई जा रही है, विश्वविद्यालयों में विभागावार आरक्षण प्रणाली लागू कर बहुजनों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश के रास्ते बंद किए जा रहे हैं। बहुजन शोधछात्रों पर जातीय उत्पीड़न किया जा रहा है। सरकार यदि आरक्षित वर्ग के सभी कोटे भर दे और एक समान शिक्षानीति लागू कर दे तो सारी समस्यायों का समाधान हो जायगा। परन्तु इन्हें ऐसा करना ही नहीं है; ये सिर्फ बहुजनों में भ्रम और विभाजक प्रवृति पैदा कर शक्ति के सभी केन्द्रों में बने रहना चाहते हैं।

किसी भी आरक्षित वर्ग की आर्थिक हैसियत चाहे कुछ भी हों, वह सामाजिक रूप से एक भीख मांगने वाले ब्राह्मण की सामाजिक हैसियत के स्तर पर नहीं आ सकता है; यह भारतीय सामाज व्यवस्था की अनोखी विशेषताएं हैं। उसी प्रकार आर्थिक रूप से विपन्न ब्राह्मण और विपन्न दलित में सामाजिक विषमता के कारण काफी घोर भेदभाव है। सामाजिक

विषमता इतनी है कि कोई भी गरीब ब्राह्मण अमीर दलित से रोटी-बेटी का संबंध स्थापित करने के नाम पर कांप जाता है। वह सोचता है कि उसका धर्म ही भ्रष्ट हो जायेगा। यह प्रमाणित करता है कि सम्पन्नता किसी दलित के अछूतपन का ईलाज नहीं है। अतः स्पष्ट है कि आरक्षित वर्ग, विषेशकर, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जातियों की सामाजिक स्तर जन्मगत कारणों से निर्धारित है। आप कहेंगे अब शारीरिक अस्पृश्यता नहीं है, परन्तु मानसिक अस्पृश्यता तो सर्वत्र है, इसे कौन नकार सकता है? इसलिए आरक्षण की सुविधा पाकर सम्पन्न हुए दलितों को आरक्षण की सुविधा से वंचित कर देने पर वह निरंतर जातिगत अत्याचार का शिकार होगा, सामाजिक रूप से अछूत समझा जायेगा, जैसा कि गरीब दलितों के साथ प्रायः होता रहता है। तब कुपरिणाम सामने यह आयेगा कि एक दलित को आर्थिक तंगहाली और जातिगत अत्याचार की दोहरी मार झेलनी पड़ेगी। आर्थिक रूप से एक भीख मांगने वाला ब्राह्मण और जूता टांकने वाला चमार एक बराबर हैं, परन्तु सामाजिक रूप से गरीब ब्राह्मण और गरीब चमार की कोई बराबरी नहीं। ब्राह्मण शीर्ष पर है, वह भूदेव यानी धरती का देवता है। उसमें भारत के राष्ट्रपति को भी आर्शीवाद देने की शक्ति है।

सवर्णों का कहना है कि एक बार आरक्षण की सुविधा ले कर सम्पन्न हुए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को आरक्षण की सुविधा समाप्त कर देनी चाहिए। उनमें भी एक क्रीमी लेयर के रूप में एक वर्गीकरण होना चाहिए। परन्तु ज्ञात हो कि इन वर्गों के ऐसे सदस्य जो आरक्षण की सुविधा पा कर सम्पन्न हुए हैं, उनमें से ऐसा कोई सदस्य नहीं है जो दो-तीन पीढ़ी पूर्व से आर्थिक समृद्धि की दृष्टिकोण से परिपूर्ण हो। सभी के सभी घोर आर्थिक विपन्नता में कठिन संघर्ष के रास्ते सफलता और समृद्धि की ऊंचाईयों को छूए हैं। यदि इन्हें आरक्षण की सुविधा से वंचित किया जाता है तो सामाजिक भेद-भाव के कारण वे पुनः आर्थिक विपन्नता के गिरफ्त में आ जायेंगे।

यह ध्यान रहे कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जानजाति को आरक्षण आर्थिक सुदृढ़िकरण के लिए नहीं, बल्कि प्रमुखतः सामाजिक समानता स्थापित करने के उद्देश्य से संविधान द्वारा दी जाती है। जब तक समाज में जातिय भेद-भाव और अस्पृष्यता विद्यमान है, सामाजिक समानता की कल्पना नहीं की जा सकती। संविधान के अनुच्छेद-46 में उपेक्षितों को सामाजिक अन्याय (Social injustice) और सभी प्रकार के शोषण (All forms of exploitation) से रक्षा करने की जिम्मेवारी राज्य को दी गई है। आर्थिक रूप से समृद्ध दलित भी सामाजिक भेद-भाव तथा जातिगत अत्याचार का शिकार होता है जैसे कि हाल ही में उड़ीसा के एक मंदिर में देश के वर्तमान महामहिम राष्ट्रपति जी को जातिभेद के कारण मंदिर के भीतर नहीं, उसके सीढ़ियों पर पूजा करवाया गया। इतना ही नहीं, पूरी के मंदिर में उनके साथ बदसलूकी भी की गईं। अतः आरक्षण की सुविधा पा कर सम्पन्न हुए दलितों में क्रीमी लेयर की अवधारणा संविधान विरूद्ध है। एक तरफ उनके प्रति सवर्ण समाज के दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं होगा तो दूसरी तरफ ऐसी अवधारण के कारण उन पर सामाजिक अत्याचार बढ़ जायेगा। इस बिन्दु पर सिर्फ बहुजन समाज को ही चिंता और चिंतन करना है।

(लेखक तीन दर्जन से अधिक पुस्तकों के रचनाकार हैं। संपर्क नं. 9006896706)

हक़मारों की सटीक पहचान

–शीलबोधि
दिल्ली

सन् 1947 में आज़ादी के समय रुपया का डालर से मुकाबला बराबर का था। इसके बाद से डालर के मुकाबले रुपया का मूल्य लगातार गिर रहा है यानी रुपए का आदान प्रदान जिस दर से विभिन्न देशों के साथ होता है, उसमें हम कमजोर और सामने वाला देश पहले से अधिक ताकतवर होता जा रहा है। रुपया भारतीय मुद्रा का मानक है। विभिन्न देशों की मुद्रा के अपने अलग मानक है। डालर, पाउंड, दीनार जैसे मानक विभिन्न देशों के मुद्रा मानक हैं। एक ही देश के लोग जिस तरह से अपनी जरूरत का सामान और सेवा का आदान प्रदान मुद्रा से करते हैं वैसे ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सेवा और सामान के विनिमय के लिए कोई अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा नहीं है। सन् 1870-1914 तक मुद्रा की क़ीमत को निर्धारित करने के लिए सोना मानक का काम करता था। मुद्रा की क़ीमत सोने की क़ीमत से प्रभावित होती थी। यह एक स्थिर यानी फिक्स मानक के रूप में काम करता था। लेकिन विश्व मुद्रा कोष के प्रयासों के चलते सन् 1944-1971 में डालर को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में स्वीकार किये जाने लगा। ब्रेट्टर वुल्डस स्टैंर्ड की डालर को अन्तर्राष्ट्रीय खरीद की सर्वमान्य और अनिवार्य मुद्रा की मान्यता सन् 1971 में लुप्त होती है। आजकल प्रचलित फ्लोटिंग रेट सिस्टम के द्वारा सेवा और सामान का आदान-प्रदान किया जा रहा है। जो पूरी तरह मार्किट पर निर्भर है, इसका मतलब हैं कि सेवा और सामान की मांग और पूर्ति पर रुपये की क़ीमत निर्भर है।

देश को एक घर की भांति समझिये, जिसमें परिवार के लोगों के मानसिक और शारीरिक श्रम से वस्तु और सेवा पैदा होती हैं। ये सामान और सेवा वह अपने घर के लिए नहीं बल्कि दूसरे अनेक घरों की जरूरत के लिए तैयार करते हैं यानी बाजार के लिए तैयार करते हैं। इस प्रकार वे दूसरों को उनकी जरूरत का सामान जितनी अधिक मात्रा में उपलब्ध कराते हैं, उससे काफी कम मात्रा में दूसरों से अपनी जरूरत का सामान प्राप्त करते हैं। सामान और सेवा के उत्पादन के दौरान उनके मानसिक और शारीरिक श्रम को जिस यूनिट में बदला जाता है, उसे मुद्रा कहते हैं। सभ्य समाज में श्रम को मुद्रा में बदलकर सुरक्षित और तरल अवस्था में रखा जाता है। मुद्रा के रूप में श्रम जो रूप अख्तियार करता है, उससे तरलता के साथ गतिशीलता प्राप्त होती है। श्रम की तरलता और गतिशीलता से पारिवारिक व व्यापारिक जरूरत की पूर्ति आसानी से हो जाती है। लोग भविष्य की जरूरत के लिए मुद्रा के रूप में अपने श्रम का संग्रह बैंक जैसी जगह कर लेते हैं। इस प्रकार हर परिवार दूसरों की जरूरत का सेवा व सामान दे रहा होता है और अपनी जरूरत का पा रहा होता है। ठीक ऐसी स्थिति विभिन्न देशों के संबंध में लागू होती है। पर, देश की सीमा में रुपया सर्वस्वीकार्य मुद्रा है, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी देश कोई एक मान्य मुद्रा को अस्तित्व में नहीं ला पाए। अब समझना यह है कि फिर रुपये का मूल्य गिरने का क्या कारण है।

उस स्थिति में जब रुपया (मुद्रा) तरल और गतिशील होता है तो आर्थिक क्रियाओं के लिए प्रोत्साहन का काम कर रहा होता है। लेकिन रुपया का मकान, सोना या वाहन जैसी मद पर खर्च से मुद्रा की तरलता और गतिशीलता बेहद कम हो जाती है। इससे आर्थिक क्रियाओं में प्रोत्साहन की स्थिति बेहद कम हो जाती है यानी मुद्रा की सक्रियता में कमी आ जाती है। रुपये की सक्रियता में कमी आने से आर्थिक विकास में भी कमी आती है। इसे हम इस प्रकार भी समझ सकते है कि मुद्रा हमारे श्रम की प्रतिनिधि इकाई है, जब श्रम की इस इकाई यानी मुद्रा को अनावश्यक खरीदे जाने वाले मकान, सोना, बैंक में संग्रह करते हैं या विदेशी बैंको में जमा करते है इससे श्रम की सक्रियता समाज से गायब हो जाती है। इस स्थिति में देश का अधिकांश श्रम-सहयोग अमीर आबादी द्वारा फ्रिज कर दिया जाता है इसलिए दूसरे देशों से श्रम-सहयोग की अदला-बदली में सक्रिय श्रम-सहयोग कम उपलब्ध होता है इसलिए हमारी मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है और दूसरे देशों से अपनी जरूरत का सेवा व सामान खरीदते हैं तो नकद मुद्रा का अभाव सामने संकट की भांति खड़ा हो जाता है।

जिन देशों की मुद्रा की दर अधिक है, वे अन्य-दूसरे-देशों को मानसिक व शारीरिक श्रम के द्वारा सेवा व सामान अधिक देते हैं इससे उनके देश में मुद्रा के रूप में काफी मात्रा में श्रम-शेष इकट्ठा हो गया है। और उनकी मुद्रा का मूल्य अधिक हो जाता है। क्योंकि इन देशों में काफी मात्रा में श्रम-शेष (मुद्रा की उपलब्धता) मौजूद होता है इसलिए कुछ अमीर लोगों द्वारा मुद्रा के एक हिस्से को फ्रिज कर लिए जाने पर भी, काफी श्रम-सहयोग (मुद्रा) प्रचलन में रहता है इसलिए सामाजिक जीवन में श्रम की तरलता व गतिशीलता लगभग प्रभावित नहीं होती है। ऐसे हालात विकसित देशों में हैं। लेकिन विकासशील देशों में जहां श्रम-शेष (मुद्रा) बिल्कुल भी फालतू नहीं होता है, उन्हें बाकी देशों से सेवा व सामान की अदला बदली के लिए अपने पास अधिक मात्रा में सेवा और सामान का तरल व गतिशील रूप यानी मुद्रा चाहिए। विकासशील अर्थव्यवस्था में यदि बड़ा पूंजीपति वर्ग देश के द्वारा पैदा कुल मानसिक व शारीरिक श्रम का 80 फीसदी अधिकारिक रूप से अपने पास फ्रिज कर लेता है तो आर्थिक अन्याय को जन्म दे रहा होता है। यह आर्थिक अन्याय किसी को दिखाई नहीं देता है। वर्तमान आर्थिक विमर्श ने इसे बड़े व्यवस्थित रूप से लोगों के सामने आने से छुपा रखा है। आर्थिक अन्याय के दिखाई न पड़ने के पीछे कारण यह है कि उत्पादन की प्रक्रिया में जो आवश्यक विविधता (diversity) है, उसे देखने और समझने के विमर्श को नकारा गया है। इससे समाज की एक बहुत छोटी अमीर आबादी लाभ ले रही है, लेकिन देश आर्थिक अन्यााय के रूप में रुपये के अवमूल्यन की मार झेल रहा होता है। 6 अप्रैल 2018 को नवभारत टाइम्स, दिल्ली में छपा कि मोदी सरकार ने *केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड* (सीबीडीटी) से पांच लोगों की एक टीम गठित करने के लिए सोच रही है जो देश के करोड़पतियों के भारत को छोड़कर दूसरे देश में चले जाने की प्रवृति की जांच करेगा। इससे पूर्व *ग्लोबल फाइनैंशल सर्विस कंपनी मार्गन स्टैकनली* की रिपोर्ट ने इस तथ्य को रेखांकित किया था कि वर्ष 2014 से लेकर अब तक 23000 करोडपति देश छोड़ चुके हैं। डाइवर्सिटी का विमर्श आंख दे सकता है, पर हमारे बीच सन्नाटा है, संविधान के निर्देष मार्ग दिखा सकते थे, पर

वह केवल लोकतंत्र का प्रतीक भर बनकर रह गया। अगर यह सच है कि देश के करोड़पति भारत को छोड़कर दूसरे देश में माइग्रेट हो रहे हैं तो इतनी हानि पैदा कर रहे है जितना अंग्रेज़ अपने सौ साल के शासन में पैदा नहीं कर पाये। आय और संसाधनों के एक स्थान पर इकट्ठा होने के भयावह परिणाम सरकार की समझ में आ जाने चाहिए। अगर डाइवर्सिटी को विकास के ऑडिट का मानदंड मान ले तो समय रहते हमें खतरे की गंभीरता का अनुमान होता रहेगा।

सुभाष गाताडे का 27 फरवरी 2017 को एक लेख *जातीयता पर चल रहे कंपनियों के बोर्ड* प्रकाशित हुआ। जिसमें उन्होंने इंडिया रिस्पॉन्सिबल बिजनेस इंडेक्स (आईआरबीआई) 2016 में उठाए सवाल को रखा कि भारत की अग्रणी कंपनियों के बोर्ड आखिर इतने विशिष्ट क्यों हैं कि उनके वहां होने वाली नियुक्तियों में विविधता के सिद्धांत की साफ़ अनदेखी की जा रही है।[1] इससे पूर्व सन् 2012 में कनाडा की नॉर्थ कोलंबिया यूनिवर्सिटी के तीन विद्वान हान दोनकर, रवि सक्सेना और डी अजित की एक टीम ने कॉर्पोरेट बोर्डों की समाजशास्त्रीय विवेचना के अपने अध्ययन के लिए ऐसी 1000 अग्रणी कंपनियों को चुना जिनका मार्केट कैपिटलाइजेशन में हिस्सा बीएसआई में दर्ज कुल कंपनियों का 80 फीसदी था। इन 1000 कंपनियों के निदेशक बोर्ड की औसत सदस्य संख्या नौ थी जिनमें से 88 फीसदी इनसाइडर, अर्थात कंपनी से ही संबंधित लोग थे, जबकि 12 फीसदी स्वतंत्र निदेशक थे। जातिगत आधार पर देखें तो इनमें से 93 फीसदी उच्च जातियों से जुड़े थे, जबकि क्रमशः 3.8 व 3.5 फीसदी लोग अन्य पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जाति-जनजातियों से थे। इस अध्ययन में यह स्पष्ट रूप से सवाल उठाया गया था कि यह मानना कठिन है कि अनुसूचित तबके का कम प्रतिनिधित्व प्रतिभा की कमी के चलते है। दरअसल यहां हम जाति की नेटवर्किंग को अहम कारक के तौर पर देख सकते हैं। कोर्पोरेट भारत की छोटी दुनिया की सारी अंतरक्रिया जातिगत रिश्तों के तानेबाने में ही चलती हैं।[2] निदेशक बोर्ड के अलावा कॉर्पोरेट में अन्य विभिन्न पदों पर नियुक्ति के संबंध में जातिगत भेदभाव की तसवीर वैसी ही चिंताजनक है। इसका खुलासा अमेरिका के प्रिंसटन विश्वविद्यालय और भारत की इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ दलित स्टडीज के संयुक्त अध्ययन में होता है। इस अध्ययन में उस तकनीक का इस्तेमाल किया गया था जो अमेरिका में अश्वेत व अन्य अल्पसंख्यकों साथ होने वाले भेदभाव को नापने के लिए बनाई गई थी। इस अध्ययन में लगभग पांच हजार आवेदन भारत की अग्रणी कंपनियों को 548 अलग-अलग पदों के लिए भेजे गए। जिन आवेदन पत्रों पर दिये नाम से यह अनुमान होता था कि वे दलित जातियों से है, कंपनियों ने संपर्क नहीं किया तथा कंपनी की तरफ से संपर्क उन्हीं कैन्डिडेट से किया गया जिसके नाम उच्च जातियों से संबंधित थे। इससे यह बिल्कुल साफ़ हो गया कि कंपनी का बोर्ड व बड़े वेतन पर काम करने वाले लोग उच्च जातियों से संबंधित हैं।

किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन की क्रिया में मुद्रा की इकाई रुपया रिजल्ट के रूप में प्राप्त होता है। इस रुपये की सर्जना में जो विविधता है, इसके वितरण में भी वैसी ही विविधता होनी चाहिए। क्रेडिट सूईसे की मानें तो रुपये का अस्सी फीसदी हिस्सा आबादी का बीस फीसदी हिस्सा हड़प लेता है और अस्सी फीसदी आबादी को रुपये के लगभग बीस

फीसदी हिस्सा पर गुजारा करना पड़ता है। इस अन्याय को उजागर करने के लिए विविधता के सिद्धांत को अपनाने की जरूरत है। क्योंकि इससे देश की आबादी का जायज हक मारने वाले हक़मार वर्ग सामने दिखाई देने लगता है।

उदारीकरण की शुरुआत उन देशों से प्रभावित होकर की गई थी जो विकासशील से विकसित देश बनने की दौड़ में अच्छे परिणाम दे रहे थे। बाहरी पूंजी से देश में कारोबार बढ़ेगा तो इससे व्यापारियों को फायदा होगा और व्यापारियों के उद्योगों में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या और आमदनी में वृद्धि होगी। इस विचार को बल देने के लिए समझाया गया कि उद्योगों के लगने से समृद्धि के जो बादल बनेंगे, उसकी बूंदाबांदी का लाभ देश के सभी लोगों को प्राप्त होगा। इसके लिए चीन, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका के उदाहरण पेश किए गए। इस उदारीकरण की योजना को लागू करने पर भारत में आर्थिक विषमता बढ़ने की रफ़्तार खतरनाक होती चली गई। दुनिया के सबसे अमीर देशों के संगठन ऑर्गनाइजेशन ऑव इकनॉमिक कोऑपरेशन एंड डिवेलपमेंट (ओईसीडी) की छवि किसी समानता प्रेमी संगठन की नहीं है। लेकिन उसी के द्वारा एक रिपोर्ट दिसम्बर 2011 में दी गई कि उदारीकरण के पिछले बीस वर्षों में भारत की वेतन विषमता बढ़कर सीधे दोगुनी हो गई है। थोड़ा विस्तार में जाएं तो 1990 के दशक में सबसे ज्यादा पगार उठाने वाले 10 फीसदी भारतीयों की औसत सालाना आय सबसे कम वेतन वाले 10 प्रतिशत लोगों की छह गुनी हुआ करती थी, जो आठ से बारह गुनी होने लगी है। यहां यह स्पष्ट कर दें कि यह तुलना अमीरी और गरीबी के अंतिम छोर पर खड़े लोगों, मसलन बड़े उद्योगपतियों और दिहाड़ी मजदूरों के बीच नहीं है, जहां आंकड़ों के घालमेल की काफी गुंजाइश होती है। पक्के क़ागज़ पर तनख्वाह लेने वाले नौकरीपेशा लोगों की आमदनी का हिसाब लगाना आसान है, और ओईसीडी के आंकड़े इसी किस्म के हैं। लेकिन चीन, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका इन तीनों देशों में वेतन विषमता पिछले बीस वर्षों में लगातार कम होने के रुझान देखें गए। चीन में सबसे गरीब 20 प्रतिशत लोगों की आमदनी पिछले दो दशकों में वहां के सबसे अमीर 20 फीसदी लोगों की आमदनी से दोगुनी रफ्तार से बढ़ी है और ब्राजील में भी गरीब लोगों की आय बढ़ने की रफ़्तार अमीर लोगों से तेज रही है। इसके विपरीत भारत में वेतन की असमानता कम करने का एक भी कारगर उपाय नहीं किया जा सका है।[3] भारत को उदारीकरण से फायदे की जगह जो नुकसान झेलने पड़ रहा है, इसका कारण है। इन तीनों देशों में आय के न्याय संगत वितरण में विविधता को सम्मान दिया गया है। आर्थिक क्रियाओं में भागीदारी के लिए विभिन्न वर्गों को भागीदारी देने की सकारात्मक पहल की है। उत्पादन के दौरान ऊपर और नीचे के स्तर पर काम करने वालों का महत्व लगभग समान है, क्योंकि एक भी हिस्सा अपना काम न करें तो उत्पादन की प्रक्रिया ठप हो जाती है। लेकिन जब उत्पादन प्रक्रिया में दिये मानसिक और शारीरिक सहयोग को सम्मानजनक रिटर्न नहीं दिया जाता है, तब आर्थिक अन्याय हो जाता है। एक बड़े वर्ग के श्रम-सहयोग का हक मार लिया जाता है। इसलिए व्यवसाय की गतिविधि के रिटर्न के वितरण का ऑडिट विविधता के सिद्धांत के आधार पर किया जाना जरूरी है।

हमें देखना यह है कि हाल-फिलहाल स्थिति में क्या कुछ सुधार आया है क्योंकि पिछली

सरकार ने तो आर्थिक प्रक्रिया में भागीदारी और उसके प्रतिफल के वितरण में विविधता की अनदेखी की थी लेकिन अच्छे दिनों का वायदा करने वाली इस सरकार की नीतियों से कुछ न्याय मिला है। सन् 2017 में देश में आमदनी के मामले में बढ़ती गैरबराबरी के चौंकाने वाले आंकड़े सामने आए हैं। राइट्स ग्रुप *ऑक्सफैम* की रिपोर्ट *ऐन इकॉनमी फॉर द 99 परसेंट* के मुताबिक, देश की 58 फीसदी संपत्ति पर यहां के महज 1 फीसदी लोगों कब्जा है। यह रिपोर्ट कहती है कि 10 फीसदी सबसे अमीर लोगों की आय में 15 फीसदी से अधिक की वृद्धि दर्ज की गई। वहीं 10 फीसदी सबसे गरीब आबादी की आय में 15 फीसदी से अधिक की गिरावट देखी गई।[4] ऑक्सफैम की इसी वर्ष 2018 में प्रकाशित रिपोर्ट और ज्यादा गंभीर स्थिति की ओर इशारा करती है। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत के 1 फीसदी लोगों के पास 73 फीसदी से ज्यादा दौलत हाथ आ गई।[5] देश की सामूहिक कमाई पर कब्जे की प्रवृति अब एक वर्ष में ही 58 फीसदी से 73 फीसदी व ृद्धि हो गई है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 39(ब) सरकार को नीतिगत निर्देश देता है कि वह आय की विषमता को न बढ़ने दे। क्या सरकार को इस निर्देश की रत्तीभर परवाह है। दो अलग संस्थानों की जो तीन रिपोर्ट ऊपर दी गई है उसमें आय की विषमता का चिंताजनक रूप उभरता है। सबसे अमीर आबादी की आय में जितनी वृद्धि हुई है लगभग उतनी ही कटौती सबसे गरीब आबादी की आय में हुई है। गरीब आबादी की आय का माइग्रेशन अमीर आबादी की ओर हुआ है। सरकार वह सशक्त इंस्टीट्यूशन है जो अपनी नीतियों से आर्थिक न्याय की व्यवस्था करती है। यह संवैधानिक निर्देश है। लेकिन प्रश्न है कि सरकार संविधान के निर्देश से संचालित है अथवा कहीं ओर से, इस पर गौर करने की जरूरत है।

उन मामलों में जहां देश की विविधता को अनदेखा कर आर्थिक गतिविधियों के मार्फत लूटा जा रहा है, वही बैंकों में जमा आम लोगों के धन पर लगातार धनकुबेरों को डाका डालने की सुविधा दी जा रही है। 'मौजूदा सरकार के शपथ ग्रहण से लेकर फरवरी 2017 तक रिजर्व बैंक अपनी मुख्य ब्याज दर *रेपो रेट* को कुल 1.7 फीसदी घटा चुका है। बैंकों ने इस कटौती का काफी हिस्सा अपने ग्राहकों तक पहुंचने नहीं दिया, क्योंकि उन्होंने सरकार की शह पर अपना काफी सारा कर्ज उन बड़े कॉरपोरेट घरानों को बांट रखा है, जो मूल तो क्या ब्याज भी चुकाने का नाम नहीं ले रहे। इस मौद्रिक नीति में इन बट्टाखाता कर्जों पर गंभीर चिंता जताई गई है और बैंकों से इनकी वसूली का आग्रह किया है।[6] समझे जाने वाली बात यह है कि ब्याज में कटौती का लाभ आम ग्राहकों को क्यों नहीं दिया गया और बड़े कोर्पोरेट घरानों को ही क्यों दिया गया है। बैंक के विविध खातों जैसे बचत, चालू, आवती आदि खातों में यह लाभ विविधतापूर्ण तरीके से वितरित न करने की नीति कैसे सवालों के घेरे में आये बिना रह सकती है।

देश की समृद्धि का वितरण विविध हाथों में तो नहीं हुआ और गंभीरता से समझिये कि विविधता के अनुरूप देश के विभिन्न हिस्सों तक में भी नहीं पहुंचने दिया गया। अमीर हाथ ही नहीं, अमीर शहर भी पहले से अधिक समृद्धि को कब्जाए बैठे हैं। देश में अमीरी बढ़ी है, लेकिन आज भी समृद्धि कुछ अलग-अलग टापूओं में सिमटी हुई है। मुबंई में 46 हजार करोड़पति, 28 अरबपति है। दिल्ली में 23 हजार करोड़पति और 18 अरबपति हैं।

इस सूची में सूरत, अहमदाबाद, विशाखापत्तटनम, गोवा, चंडीगढ, जयपुर और बडोदरा जैसे शहर भी शामिल हैं।[7] विकास को निश्चित शहरों और निश्चित आबादी तक सीमित कर दिया गया है, आंकड़े अपनी जुबान बोल रहे हैं।

देश के लिए निर्मित नीति से हथियारों की खरीद में हमारा नंबर पहला है। स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीरट्यूट (सिप्री) के अनुसार भारत ने दुनिया भर में सबसे ज्यादा 14 फीसदी हथियार आयात कर दुनिया में नंबर एक पर है। यह हथियार आयात चीन से तीन गुणा ज्यादा है। हथियारों को निर्यात करने वाले देशों में अमेरिका 33 फीसदी और रूस 25 फीसदी के साथ क्रमशः पहले व दूसरे नंबर पर है। हथियार की बिक्री का लाभ अमेरिका और रूस जैसे देशों को मिल रहा है। पिछले दिनों आये आधुनिक गुलामी के आंकडे भी हमें नंबर एक पर खड़ा करते हैं। ऑस्ट्रेलिया के मानवधिकार समूह *वाक फ्री फाउंडेशन* ने *वैश्विक गुलामी सूचकांक 2016* के आंकडें जारी किए हैं जिसमें 167 देशों में आधुनिक गुलामी पाई गई जिसमें भारत सबसे अव्वल यानी पहले नम्बार पर है। आधुनिक गुलामी का मतलब हैं कोई ऐसा काम जिसे चाह कर भी छोड़ा या बदला न जा सके। जैसे वैश्यावृत्ति, भीख मांगना, बंधवा मजदूरी आदि। पूरे संसार में ऐसे अभागे तकरीबन 4 करोड़ 60 लाख है और अकेले भारत में 1 करोड़ 83 लाख 50 हजार है।[9]

सरकार किस पार्टी की है हम इस पर बात नहीं कर रहे हैं, सरकार चलाने वालों के सरोकारों को पहचानने की कोशिश कर रहे हैं। हमारे सामने *ग्लोबल हंगर इंडेक्स-2011* की रिपोर्ट है जिसके मुताबिक 81 देशों की सूची में भारत *67वां* है जो अपने पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान और श्रीलंका से भी नीचे है। मौजूदा वक्त में लगभग एक तिहाई आबादी भुखमरी और कुपोषण ग्रस्त है। दूसरी ओर इसी देश में लाखों टन अनाज भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में और अन्य स्थानों में रख-रखाव की गड़बड़ियों के कारण हर साल सड़ जाता है। नेशनल सैंपल सर्वे ऑर्गनाइजेशन (एनएसएसओ) के मुताबिक कुल भारतीय जनसंख्या में गरीबों का हिस्सा 60-50 फीसदी है, ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा गठित एन सी सक्सेना समिति के अनुसार 50 फीसदी, अर्जुन सेन गुप्ता के अनुसार 77 फीसदी, सुरेश तेंदुलकर की अगुवाई वाले विशेषज्ञ समूह की रिपोर्ट के अनुसार 37.2 फीसदी और योजना आयोग के मुताबिक 21.8 से 27. 5 फीसदी है।[10] 1 जून 2016 को प्रमुख लिडिंग अखबार नवभारत टाइम्स ने अपने संपादकीय में लिखा था कि अनुमान है कि देश में 20 करोड़ ऐसे लोग हैं जो हर सुबह यह सोचकर परेशान रहते हैं कि आज उन्हें कुछ खाने को मिलेगा या नहीं। मुट्टीभर लोगों की खुशहाली दिखाकर तरक्की के गीत गाए जा रहे हैं। जबकि हासिए के लोगों को 1 रुपये किलो चावल के सपने दिखाये जा रहे हैं।

एक जनहित याचिका पर सुनवाई में 20 अप्रैल 2011 को सरकार की ओर से अडिशनल सॉलिसिटर जनरल मोहन परासरन ने सुप्रीम कोर्ट को बताया कि कुपोषण से निपटने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सही किया जा रहा है। अभी गरीबी रेखा से नीचे 36 फीसदी लोग ही हैं, जिस पर जस्टिस दलवीर भंडारी और जस्टिस दीपक वर्मा की खंडपीठ ने योजना आयोग से कहा है कि गरीबों की संख्या 36 फीसदी बताने से संबंधित तर्क को स्पष्ट करें। बहस के दौरान सुप्रीम कोर्ट ने टिप्पणी की कि *आप दो देश नहीं हो सकते*

हैं। कुपोषण को खत्म करने को लेकर आपके रवैये में जबर्दस्त विरोधाभास है। आप कहते है कि आप शक्तिशाली देश हैं, लेकिन इसी देश के कई हिस्सों में भूख से मौत हो रही है।[11]

सरकार की नीतियों के निहितार्थ खुद सरकारी आंकड़ों में ही उजागर हो जाते हैं। *बाल श्रम निषेध व नियमन संशोधन विधेयक 2016* का मकसद बाल मजदूरी के खिलाफ पहले से चले आ रहे क़ानून को नरम बनाना है। इसके पास होते ही 14 साल की उम्र तक के बच्चों से पारिवारिक कारोबार और फिल्म व टेलीविजन कार्यक्रमों में बेखटके काम कराया जा सकता है। बच्चों के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक समझे जाने वाले उद्योगों की संख्या भी 83 से घटाकर सिर्फ 3 कर दी गई है। अभी सिर्फ खदान, ज्वलनशील पदार्थ और विस्फोटक उद्योग को ही खतरनाक माना गया है। जरी और चूड़ी के कुटीर उद्योगों में, कपड़ों की दुकान पर और तमाम कारखानों में बच्चे काम कर सकते हैं। इसके लिए सरकार ने विचित्र तर्क दिया है। उनका कहना है कि बच्चों को शुरू से ही अपने पारिवारिक कारोबार में शामिल होकर अपना पुश्तैनी हुनर सीखना चाहिए।[12] अपवाद को छोड़ दिया जाए तो सामान्यातः बाल मजदूर अनुसूचित जाति, जनजाति और ओबीसी वर्ग से आते हैं। संविधान लागू होने के बाद उन्हें शिक्षा का अधिकार मिला है, जिससे निम्न स्तर के काम करने वाले इस वर्ग का प्रतिनिधित्व सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्रों में फैल रहा है। बच्चों को पुश्तैनी काम बचपन में ही सीखने की सीख देने वाली सोच वर्ण व्यवस्था की सैंद्धातिकी है। इस सोच को श्रम व रोजगार संबंधी संसदीय समिति की 40वीं रिपोर्ट में नकारा गया। बच्चों द्वारा स्कूली घंटों के बाद अपने परिवार की मदद करने का प्रावधान बिल से हटाया जाए और जोखिम वाले काम की परिभाषा में वे सभी काम शामिल किए जाएं, जो किशोरों के स्वास्थ्य, सुरक्षा और नैतिकता को नुकसान पहुंचाते हैं। किशोरों को किसी भी रोज़गार में जाने से पहले अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करनी चाहिए। लेकिन इस क़ानून से यह संदेह पैदा होता है कि सरकार की चिंता सिर्फ उद्योगों को बच्चों की शक्ल में सस्ते मजदूर मुहैया कराने तक सीमित है।[13]

उद्योगों के लिए बाल श्रमिक के रूप में सस्ते मजदूरों की व्यवस्था, अमीरों की संख्या में बढ़ौतरी, भूखमरी में बढ़ौतरी, अमीर आबादी की आय में वृद्धि तो गरीब आबादी की आय में कमी, हथियारों की खरीद के मामले में दुनिया में अव्वल तो आधुनिक गुलामी के आंकडों में भी दुनिया में अव्वल आना जैसे अनेक मामलों में सरकारी नीतियां इस प्रकार बनाई जा रही हैं जैसे एक नहीं दो देशों के लिए बनाई जा रही हैं। 20 अप्रैल 2011 को सुप्रीम कोर्ट ने अडिशनल सॉलिसिटर-जनरल मोहन परासरन के मध्य से सरकार से कह ही दिया है कि आप दो देश नहीं चला सकते हैं। संभवतः कोर्ट का इशारा मा. कांशीराम द्वारा पहचाने गए 15 फीसदी सवर्ण और 85 फीसदी बहुजन की ओर था। बहुजन के हक और अधिकारों में क्षति पहुंच रही है। डाइवर्सिटी के औजार से देश की गतिविधियों का ऑडिट करने से इस प्रकार की भयावह विसंगतियां प्रकट होती है और सवर्ण आबादी द्वारा चलाये जा रहे हक़मार आंदोलन के स्वर के लिए हक़मारों की सटीक पहचान भी हो जाती है।

(लेखक विशिष्ट दलित साहित्यकार हैं। संपर्क : 9971566918)

परिशिष्ट

एससी/एसटी में क्रीमी लेयर

—Dilip C Mandal

क्रीमी लेयर एक षड्यंत्र है। कैसे, जानिए Dilip Mandal Ki Pathshala में

1. किसी भी समाज के हक या स्वार्थ की लड़ाई उस समाज का क्रीमी लेयर ही लड़ता है। सवर्णों के स्वार्थ की लड़ाई टूटी साइकिल पर चलने वाला भिखारी ब्राह्मण पुजारी नहीं, वहां के क्रीम यानी मोहन भागवत या जस्टिस दीपक मिश्रा या देवकीनंदन ठाकुर, या वकील शांति भूषण, या बाबा रविशंकर या सवर्ण संपादक, प्रोफेसर, वकील जैसे लोग लड़ते हैं।

2. अगर किसी समाज के क्रीमी लेयर को उस समाज से अलग कर दिया जाए या उनके हित अलग-अलग हो जाएं तो उस समाज की आवाज कमजोर हो जाती है।

3. यही वजह है कि भारत में OBC रिजर्वेशन लागू नहीं हो पाता है जबकि SC/ST रिजर्वेशन काफी हद तक असरदार है। OBC का जो तबका OBC के हक की लड़ाई लड़ने की क्षमता रखता है, उसे क्रीमी लेयर में डाल दिया गया है। आरक्षण लागू करने या आरक्षण बचाने में क्रीमी लेयर ओबीसी का कोई इंट्रेस्ट नहीं होता।

4. अगर SC/ST में भी क्रीमी लेयर लागू किया गया और इस समाज के असरदार लोगों का हित और समाज का हित अलग-अलग हो गया तो SC/ST कोटा फिर कभी लागू नहीं हो पाएगा।

5. खाली रह गई सीटों पर कौन समाज कब्जा जमाता है, यह बताने की आपको जरूरत नहीं है।

पिन्कू प्रताप आंबेडकर

बात में दम है

Narottam Mahanand

बिलकुल सही बात है, ये लोग बस हमे group d पोस्ट तक ही सिमित रखना चाहते हैं।

संजीव आदिवासी

बहुत सटीक जानकारी दी है सर।

Mahesh Sood

बिलकुल सही बात है ..

DA Kumar

ब्राह्मण व्यवस्था यही चाह रही हैं..। सब अलग-थलग पड़े रहें ..हम लोग इसका विरोध करेंगे..। जय भीम जय पेरियार..–

Kush Saurabh

जब रोजी, रोटी, मकान की व्यवस्था हो जाती है और कुछ सीमा तक भय कम हो जाता है तभी स्वाभिमान, सम्मान, समता, स्वतंत्रता और भागीदारी की बात व्यक्ति करता है।

Dilip C Mandal

मतलब ये चाहते हैं कि उनके डॉक्टर मोहन भागवत और जस्टिस दीपक मिश्रा की साजिशों का मुकाबला हमारे मंगरू राम, खेत मजदूर और विनोद वाल्मीकि, सीवर सफाईकर्मी करे। और हमारे डॉ. विनोद कांबली और प्रोफेसर रमेश जाटव क्रीमी लेयर बन जाएं और जनरल कटेगरी में शामिल होकर समाज से कट जाएं।

Bharat Patel

लागू होना भी चाहिए क्योंकि जिसको लाभ नहीं मिल रहा, उसे भी मिलेगा। अब तक तो जो भरे पेट हैं वो ही डकार जाते हैं सब माल। जिनको जरुरत है उनको तो कुछो नहीं मिलता।

Amit Kumar

सभी में क्रीमीलेयर लगाना मूल उद्देश्य ताकि एससी-एसटी ओबीसी आरक्षण एक साथ खत्म करना आसान हो जाए। उनको पता है समाजिक भेदभाव की समस्या कभी दूर नही होगी।

Mukesh Dongre

अब हमें खुले वर्ग में क्रीमी लेयर शुरू करवाने की आवाज बुलंद करनी चाहिये।

Viptsa Goutam

जो सक्षम है वो प्रशासन और शासन में प्रतिनिधित्व कर अपने वर्ग के विकास करेगा

Ramkumar Maurya

चलो मान लेते हैं कि क्रीमी लेयर सही है, किंतु सभी जातियों और वर्गों पर समान रूप लागू होनी चाहिए। अगर ऐसा हो जायेगा तो बंचित दबे हर दलित-पिछड़ा-सवर्णो के सभी गरीब लोगों को मौका मिल जायेगा। सबको न्याय अधिकार मिल जायेग

Ajay Suman Kumar

शत प्रतिशत सही विश्लेषण।

Amit Kumar

यदि सवाल सिर्फ क्रीमीलेयर (आर्थिक) स्थिति का है।

कोर्ट और सामान्य वर्ग का कहना है मात्र दो ढाई पीढ़ी (सत्तर साल) में आरक्षित वर्ग, आरक्षित का हक़ मार रहा है। कई पीढ़ियों से अमीर बना सामान्य वर्ग, गरीब सामान्य का हक़ नहीं मार रहा है?

फिर क्रीमीलेयर की जरूरत आरक्षित वर्ग को है या सामान्य वर्ग को? लेकिन चिंता सिर्फ एससी-एसटी गरीबों की ही क्यों? वह गरीब आरक्षण होते हुए भी लाभ से वंचित है क्योंकि महँगे स्कूल डीपीएस, केपीएस, डीएवी, कान्वेंट, पब्लिक स्कूल में नही पढ़ सकता! इन्हें बजाय मुफ्त कोचिंग अच्छी स्कूलिंग के, आरक्षण देने की बात की जाती है जो पहले ही मिला हुआ है। फिर क्या फायदा है सामान्य वर्ग को एससी-एसटी में क्रीमीलेयर आने से? सीटें रिक्त होंगी --कन्वर्ट होगा सामान्य वर्ग में, आरक्षण के नाम पर गाली खायेंगे आरक्षित और मलाई खायेगा सामान्य वर्ग!

R S Bouddh

कोई सिलेक्शन न ले, बीच मे किसी कारणवश नौकरी छोड़ दे या निकाल दिया जाए या किसी भी तरह कोई सीट खाली हो तो वो कैसे भरी जाती है, इसके नियम कानून के बारे में एक पोस्ट डालिये, साथ ही कार्मिक मंत्रालय के आकड़ों के हिसाब से बताइये कि किसने इनका सबसे ज्यादा मजा मारा है?

Mohan Arya

मान्यवर कांशीराम पंजाब में दलितों को संगठित करने की कोशिश कर रहे थे तो मनुवादियों के प्रचारतंत्र के शिकार कई बाल्मीकि जाति के सदस्यों ने देशव्यापी दक्षिणपंथी संगठन के वरदहस्त में अपनी अलग इकाई बनाकर यह कहना शुरू किया कि कांशीराम जाटव नेता है और जाटवों के लिए बाल्मीकि का हक़ मार रहा है और बाल्मीकि को अलग से आरक्षण मिलना चाहिए। यह विमर्श जायज लग रहा था और इसके मूलसूत्रधारों की अपेक्षा के अनुसार कांशीराम के बहुजन एकता की धारणा में रुकावट भी पैदा कर रहा था। कांशीराम ने दिल्ली में सभा की और मंच से बयान दिया 'मैं चमारों का नेता यह मांग करता हूँ कि चमारों के हिस्से का आरक्षण भी बाल्मीकि को दे दिया जाय।' कुशल रणनीतिज्ञ कांशीराम के इस एक बयान ने मनुवादियों के षड्यंत्र को पूरी तरह नाकाम कर दिया। इस प्रसंग को याद करने का वर्तमान संदर्भ SC/ST में क्रीमी लेयर का प्रश्न है जो सुप्रीम कोर्ट में विचाराधीन है। सरकार की तरफ से पूर्व में ऐसे मामलों में जैसी पैरवी की गई है उससे इसके परिणाम का अंदाजा लगाया जा सकता है। लेकिन देशभर में दलित अकादमिकों, नेताओं और संगठनों की तरफ से भी दलित विरोधियों के इस दुष्प्रचार का समुचित उत्तर नहीं दिया जा सका है कि आरक्षण का फायदा गरीब दलितों को नहीं मिल पा रहा है। हांलाकि यह दलील सही है कि आरक्षण गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम न होकर एक प्रातिनिधिक लोकतांत्रिक सिद्धांत है लेकिन यह बात इंद्रा साहनी केस में ओबीसी के लिए क्रीमी लेयर लगाकर सुप्रीम कोर्ट द्वारा नकारी गई है। याद रखिये संविधान में सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़े वर्गों की बात कही

गई है। लेकिन सुप्रीम कोर्ट की सबसे बड़ी संवैधानिक पीठ ने इसमें आर्थिक अंतर्वस्तु का प्रवेश किया है जिसे संसद ने पलटा नहीं है और आरक्षण के मूल उद्देश्य के विपरीत अब यह एक सच्चाई है और SC/ST के लिए इसका लागू होना केवल समय का प्रश्न है। ऐसे में मेरा व्यक्तिगत रूप से मानना है की मान्यवर का अनुसरण करते हुए दलित अकादमिकों, पत्रकारों और कार्यकर्ताओं को कोर्ट, राजनीतिक नेतृत्व और सिविल सोसाइटी में SC/ST में क्रीमीलेयर का सीधे विरोध न करते हुए यह मांग करनी चाहिए

1. SC/ST को नियुक्ति और प्रोमोशन में ही नहीं बल्कि निजी सेक्टर, सेना, मीडिया, न्यायपालिका में भी आरक्षण दिया जाय और इन तमाम जगहों में क्रीमी लेयर लगा दी जाय।

2. खाली रह गई सीटों को SC/ST के क्रीमी लेयर से भरा जाय और बैकलॉग किसी भी स्थिति में न रखा जाय

इस विमर्श से न केवल संविधान की मूल सामाजिक और आर्थिक न्याय की अवधारणा पुष्ट होती है बल्कि इसमें सुप्रीम कोर्ट द्वारा बाद में ईजाद किया गया सिद्धांत भी समाहित होता है। और साथ ही गरीब दलितों का हक अमीर दलितों द्वारा हड़पने का तर्क भी खारिज होता है और एक बड़ा षड्यंत्र नाकाम किया जा सकता है।

रेखा सुर

दिलीप सर, क्या ये षड्यंत्र बहुजन समाज के गद्दार नेताओं को समझ में नहीं आता है? कुछ पगले तो इसका जमकर स्वागत कर रहे है!

Vikas Gour

रेखा सुर नेताओ को हड्डी मिल जाती है, उसी में वह खुश हो जाते हैं

Kush Saurabh

जो sc, st, obc अभ्यर्थी अपने बैच में टॉपर होता है, उसे भी तो आरक्षणखोर ही कहा जाता है।

—फेसबुक, 27 सितम्बर, 2018

Dilip C Mandal

आपके शहर, मोहल्ले, ऑफिस, यूनिवर्सिटी में SC/ST का संगठन कौन चलाता है? आंदोलन के लिए पैसे कौन देता है? आपके केस कौन लड़ता है? आपके बच्चों के हॉस्टल कौन चलाता है? बाबा साहेब की मूर्ति के लिए चंदा कौन देता है। पे बैक टू सोसायटी कौन करता है? अगर वो सारे लोग क्रीमी लेयर बना कर समाज से काट दिए गए तो मोहन भागवत, रविशंकर, दीपक मिश्रा, सुमित्रा महाजन, मुकेश अंबानी, नृपेंद्र मिश्रा जैसे सवर्ण क्रीमी लेयर का मुकाबला कौन करेगा? खेत मजदूर मंगरू जाटव, रिक्शाचालक मोहन पासी, सब्जी विक्रेता राजू मेश्राम, या सीवर सफाईकर्मी दिनेश कुमार?

किसी भी समाज के हक़ की लड़ाई समाज का मिडिल क्लास ही लड़ता है। तमाम कमियों और खामियों और स्वार्थों के बावजूद यही समाज का वैनगार्ड होता है। यानी अग्रणी

दस्ता। आप पसंद करें या न करें, यही सच है। यह सवर्ण, ओबीसी या एससी-एसटी हर समाज का सच है। क्रीमी लेयर साजिश है!

—फेसबुक, 27 सितम्बर, 2018, 8. pm

Dilip C Mandal

चीफ जस्टिस रंगनाथ मिश्रा के सगे भतीजे जस्टिस दीपक मिश्रा क्रीमी लेयर में हैं कि नहीं? बिना जज की परीक्षा पास किए सिर्फ संपर्कों के आधार पर वे वकील से हाई कोर्ट में जज, फिर हाई कोर्ट में चीफ जस्टिस, फिर सुप्रीम कोर्ट में जज और फिर सुप्रीम कोर्ट में चीफ जस्टिस बन गए। वे उन 200 परिवारों में से हैं, जिनसे 80% से ज्यादा जज आते। यह कोलेजियम का कलंक है।

इसलिए सवर्णों, खासकर ब्राह्मणों को तो मेरिट की बात करनी नहीं चाहिए। जनेऊ कनेक्शन ही उनका मेरिट है।

—फेसबुक, 27 सितम्बर, 2018 9.15 pm